

संक्षिप्त योगवासिष्ठाङ्करी विषय-सूची

विषय

पृष्ठ-संख्या विषय

१-महर्षि वसिष्ठजीको नमस्कार (सुतीक्ष्ण, नि० प्र० उ० २१६ । २६) ...	१	३-जीवन्मुक्तके स्वरूपपर विचार. जगत्के भ्रम तथा तथा द्विविध वाग्नाय निरूपण तथा भगवान् श्रीरामजी तीर्थ-यात्रा परान ...	२
२-भगवान् श्रीरामको नमस्कार (वसिष्ठ, नि० प्र० पृ० २ । ६०) ...	१	४-तीर्थ-यात्राके लक्ष्य हृष्ट भोगजी मित्रता एव वित्तके धर्मके निरूपण, राजा जगत्के भ्रम विश्वामित्रका अगमन और राजाका उत्तर सत्कार ...	३
३-योगवासिष्ठमें भगवान् श्रीरामके स्वरूप तथा माहात्म्यका प्रतिपादन ...	२	५-विश्वामित्रका अपने कर्त्तव्यका निवेदन मौनता और राजा जगत्के भ्रम, उन्ने केनेके भ्रम अगमनर्यता विवक्षिता ...	३
४-कल्याण ('शिव') ...	३	६-विश्वामित्रका योग-पण्डितका राजा जगत्के भ्रम नमजाना, राजा जगत्के भ्रम, उन्ने केनेके भ्रम लिये नारायणको भजना तथा भगवान् के भ्रम महाराजके भोगजी वरदानका ...	४
५-एकश्लोकी योगवासिष्ठ (तत्त्वचिन्तक स्वामीजी श्रीअनिरुद्धाचार्यजी वैकटाचार्यजी महाराज) ...	४	७-विश्वामित्र आदिजी प्रेरणाके राजा जगत्के भ्रम श्रीरामको लभाने दुःखपर उत्तर भगवान् के भ्रम और मुक्तिके प्रारम्भिक भोगजी वरदानके भ्रम मूलक देवगन्धर्व, नारायण ...	४
६-वासिष्ठ बोध-सार [कविता] (पाण्डेय श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम') ...	४	८-धन-व्ययन तथा आभूषण भोगजी वरदान दुःखजनकता परान ...	४
७-योगवासिष्ठकी श्रेष्ठता और समीचीनता (पण्डित श्रीजानकीनाथजी शर्मा) ...	५	९-भगवान् और निराले भ्रम ...	५
८-योगवासिष्ठकी आजके आत्मशान्ति, विश्व- शान्तिके इच्छुक विश्वको चुनौती तथा इस क्षणका ज्ञान-बन्धुत्व एव ज्ञानाभास (श्रीरामनिवासजी शर्मा) ...	५	१०-भूषण की मित्रता ...	५
९-भगवान् वसिष्ठकी जय (श्रीसूरजचन्दजी सत्यप्रेमी 'डॉंगीजी') ...	९	११-नारी-मित्रता ...	५
१०-योगवासिष्ठका साध्य-साधन ...	१०	१२-कल्याणरक्षणके भ्रम ...	५
११-योगवासिष्ठका दुरुपयोग नहीं होना चाहिये (भक्त श्रीरामशरणदासजी) ...	११	१३-भगवान् के भ्रम ...	५
१२-श्रीगुरुवर-वसिष्ठ-स्तवन [कविता] (प० श्रीरामनारायणजी त्रिपाठी 'मित्र' शास्त्री)	१५	१४-भगवान् के भ्रम ...	५
वैराग्य-प्रकरण	१६	१५-भगवान् के भ्रम ...	५
१-सुतीक्ष्ण और अगति, कारुण्य और अग्निवेद्य, सुखचि तथा देवदूत और अरिष्टनेमि एव वाल्मीकिके संवादका उल्लेख करते हुए भगवान् के श्रीरामावतारमें ऋषियोंके शापको कारण बताना ...	१७	१६-भगवान् के भ्रम ...	५
२-इस शास्त्रके अधिकारीका निरूपण, रामायणके अनुशीलनकी महिमा, भरद्वाजको ब्रह्माजीका वरदान तथा ब्रह्माजीकी आजके वाल्मीकिरा भरद्वाजको संसार-दुःखसे छुटकारा पानेके निमित्त उपदेश देनेके लिये प्रवृत्त होना ...	२१	१७-भगवान् के भ्रम ...	५



COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

**Icreator of
hinduism
server!**



KAPWING

- १-जागतिक पदार्थोंकी परिवर्तनशीलता एवं अस्थिरताका वर्णन ... ५८
- २०-श्रीरामकी प्रबल वैराग्यपूर्ण जिज्ञासा तथा तत्त्वज्ञानके उपदेशके लिये प्रार्थना ... ५९
- २१-श्रीरामचन्द्रजीका भाषण सुनकर सबका आश्चर्यचकित होना, आकाशसे फूलोंकी वर्षा, सिद्ध पुरुषोंके उद्गार, राजसभामें सिद्धों और महर्षियोंका आगमन तथा उन सबके द्वारा श्रीरामके वचनोंकी प्रशंसा ... ६२

मुमुक्षु-व्यवहार-प्रकरण

- १-विश्वा मित्रजीका श्रीरामको तत्त्वज्ञानसम्पन्न बताते हुए उनके सामने शुक्रदेवजीका दृष्टान्त उपस्थित करना, शुक्रदेवजीका तत्त्वज्ञान प्राप्त करके परमात्मामें लीन होना ... ६५
- २-विश्वामित्रजीका वसिष्ठजीसे श्रीरामको उपदेश करनेके लिये अनुरोध करना और वसिष्ठजीका उसे स्वीकार कर लेना ... ६८
- ३-जगत्की भ्रमरूपता एवं मिथ्यात्वका निरूपण, सदेह और विदेह मुक्तिकी समानता तथा शास्त्र-नियन्त्रित पौरुषकी महत्ताका वर्णन ... ६९
- ४-शास्त्रके अनुसार सत्कर्म करनेकी प्रेरणा, पुरुषार्थसे भिन्न प्रारब्धवादका खण्डन तथा पौरुषकी प्रधानताका प्रतिपादन ... ७१
- ५-ऐहिक पुरुषार्थकी श्रेष्ठता और दैववादका निराकरण ... ७३
- ६-विविध युक्तियोंद्वारा दैवकी दुर्बलता और पुरुषार्थकी प्रधानताका समर्थन ... ७४
- ७-पुरुषार्थकी प्रबलता बताते हुए दैवके स्वरूपका विवेचन तथा शुभ वासनासे युक्त होकर सत्कर्म करनेकी प्रेरणा ... ७६
- ८-श्रीवसिष्ठजीद्वारा ब्रह्माजीके और अपने जन्मका वर्णन, ज्ञानप्राप्तिका विस्तार, श्रीरामजीके वैराग्यकी प्रशंसा, वक्ता और प्रश्नकर्ताके लक्षण आदिका विशेषरूपसे वर्णन ... ७७
- ९-ससारप्राप्तिकी अनर्थरूपता, ज्ञानका उत्तम माहात्म्य, श्रीराममें प्रश्नकर्ताके गुणोंकी अधिकताका वर्णन, जीवनमुक्तिरूप फलके

- हेतुभूत वैराग्य आदि गुणोंका तथा भ्रमका विशेषरूपसे निरूपण ... ८२
- १०-विचार, सतोप और सत्समागमका विशेष-रूपसे वर्णन तथा चारों गुणोंमेंसे एक ही गुणके सेवनसे सद्गति का कथन ... ८७
- ११-प्रकरणोंके क्रमसे ग्रन्थसंख्याका वर्णन, ग्रन्थकी प्रशंसा, शान्ति, ब्रह्म, द्रष्टा और दृश्यका विवेचन, परस्पर सहायक प्रज्ञा और सदाचारका वर्णन ... ९०

उत्पत्ति-प्रकरण

- १-दृश्य जगत्के मिथ्यात्वका निरूपण, दृश्य ही बन्धन है और उसका निवारण होनेसे ही मोक्ष होता है, इसका प्रतिपादन तथा द्रष्टाके हृदयमें ही दृश्यकी स्थितिका कथन ... ९६
- २-ब्रह्माकी मनोरूपता और उसके संकल्पमय जगत्की असत्ता तथा ज्ञाताके कैवल्यकी ही मोक्षरूपताका प्रतिपादन ... ९७
- ३-मनके स्वरूपका विवेचन, मन एवं मनःकल्पित दृश्य जगत्की असत्ताका निरूपण तथा महाप्रलय-कालमें समस्त जगत्को अपनेमें लीन करके एकमात्र परमात्मा ही शेष रहते हैं और वे ही सबके मूल हैं, इसका प्रतिपादन ... ९९
- ४-ज्ञानसे ही परासिद्धि या परमात्मप्राप्तिका प्रतिपादन तथा ज्ञानके उपायोंमें सत्सङ्ग एवं सत्-शास्त्रोंके स्वाध्यायकी प्रशंसा ... १०२
- ५-परमात्माके ज्ञानकी महिमा, उसके स्वरूपका विवेचन, दृश्य जगत्के अत्यन्ताभाव एवं ब्रह्मरूपताका निरूपण तथा आत्मज्ञानकी प्राप्ति के लिये योगवासिष्ठ ही सर्वोत्तम शास्त्र है—इसका प्रतिपादन ... १०३
- ६-जीवन्मुक्तिका लक्षण, जगत्की असत्ता तथा ब्रह्मसे उसकी अभिन्नताका प्रतिपादन, परब्रह्म परमात्माके स्वरूपका वर्णन ... १०५
- ७-जगत्की ब्रह्मसे अभिन्नता, परमार्थ-तत्त्वका लक्षण, महाप्रलयकालमें जगत्के अधिष्ठानका विचार तथा जगत्की ब्रह्मरूपताका प्रतिपादन ... १०७

- ८—ब्रह्ममें जगत्का अध्यारोप, जीव एव जगत्के रूपमें ब्रह्मकी ही अखण्ड सत्ताका वर्णन ... १०९
- ९—भेदके निराकरणपूर्वक एकमात्र ब्रह्मकी ही अखण्ड सत्ताका वर्णन तथा जगत्की पृथक् सत्ताका खण्डन ... १११
- १०—जगत्के अत्यन्ताभावका प्रतिपादन, मण्डपोपाख्यानका आरम्भ, राजा पद्म तथा रानी लीलाका परस्पर अनुराग, लीलाका सरस्वतीकी आराधना करके वर पाना और रणभूमिमें पतिके मारे जानेसे अत्यन्त व्याकुल होना ... ११४
- ११—सरस्वतीकी आज्ञासे पतिके शवको फूट्योनी देरीमें रखकर समाधिस्थित हुई लीलाका पतिके वासनामय स्वरूप एव राजर्षिभवको देखना तथा समाधिमें उठकर पुनः राजनभामें सभासदोंका दर्शन करना ... ११८
- १२—लीलाका सरस्वतीसे कृत्रिम और अकृत्रिम सृष्टिके विषयमें पूछना और नरन्वतीका इस विषयको समझानेके लिये लीलाके जीवनसे मिलते-जुलते एक ब्राह्मण-दम्पतिके जीवनका वृत्तान्त सुनाना ... १२१
- १३—लीला और सरस्वतीका सवाद—जगत्की अगन्ता एव अजातवादकी स्थापना ... १२४
- १४—लीला और सरस्वतीका सवाद—सब कुछ चिन्मात्र ब्रह्म ही है, इसका प्रतिपादन ... १२६
- १५—वासनाओंके क्षयका उपाय और ब्रह्मचिन्तनके अभ्यासका निरूपण ... १२९
- १६—सरस्वती और लीलाका शनदेहके द्वारा आनन्दमें गमन और उसका वर्णन ... १३०
- १७—लीलाका भूतलमें प्रवेश और उससे द्वारा अपने पूर्वजन्मके स्वजनोके दर्शन, ज्येष्ठशर्माके माताके रूपमें लीलाका दर्शन न होनेका कारण ... १३१
- १८—लीलाकी सत्य-संकल्पता, उसे अपने अनेक जन्मोंकी स्मृति-लीला और सरस्वतीका आत्मशर्म भ्रमण तथा परम व्योम—परमात्माकी अनादि-अनन्त सत्ताका प्रतिपादन ... १३३
- १९—लीलाद्वारा ब्रह्माण्डोंका निरीक्षण, दोनों देविदोषा भारतवर्षमें लीलाके पतिके राज्यमें जाना और वहाँ युद्धका आदेश देनेका ... १३५
- २०—लीला और नरन्वतीका सवाद—सब कुछ स्थित हो युद्धका दण्ड देना ... १३५
- २१—युद्धका वर्णन तथा उभयपक्षोंके ... १३५
- २२—युद्धका उत्तराह्निक, राजा विदूरथके ... १३५
- २३—राजा पद्मके भक्तमें ... १३५
- २४—राजा विदूरथ ... १३५
- २५—राजा विदूरथ ... १३५
- २६—राजा विदूरथ ... १३५

- उठनेसे नगर और अन्तःपुरमें उत्सव, लीलो-
पाख्यानके प्रयोजनका विस्तारसे कथन ... १६७
- २७—सृष्टिकी असत्यता तथा सबकी ब्रह्मरूपताका
प्रतिपादन ... १७५
- २८—जगत्की असत्ता या भ्रमरूपताका प्रतिपादन तथा
नियति और पौरुषका विवेचन ... १७७
- २९—ब्रह्मकी सर्वरूपता तथा उसमें भेदका अभाव,
परमात्मासे जीवकी उत्पत्ति और उसके स्वरूपका
विवेचन, परमात्मासे ही मनकी उत्पत्ति, मनका
भ्रम ही जगत् है—इसका प्रतिपादन तथा जीव-
चित्त आदिकी एकता ... १७८
- ३०—चित्तका विलास ही द्वैत है, त्याग और ज्ञानसे
ही अज्ञानसहित मनका क्षय होता है—इसका
प्रतिपादन तथा भोक्ता जीवके स्वरूपका वर्णन १७९
- ३१—परमात्मसत्ताका विवेचन, बीजमें वृक्षकी भौति
परमात्मामें जगत्की त्रैकालिक स्थितिका
निरूपण तथा ब्रह्मसे पृथक् उसकी सत्ता नहीं
है—इसका प्रतिपादन ... १८२
- ३२—जगत्की ब्रह्मसे पृथक् सत्ताका खण्डन, भेदकी
व्यावहारिकता तथा चित्तकी ही दृश्यरूपताका
प्रतिपादन ... १८५
- ३३—यह दृश्य-प्रपञ्च मनका विलासमात्र है, इसका
ब्रह्माजीके द्वारा अपने अनुभवके अनुसार प्रति-
पादन ... १८६
- ३४—स्थूल-शरीरकी निन्दा, मनोमय शरीरकी विशेषता,
उसे सत्कर्ममें लगानेकी प्रेरणा, ब्रह्मा और उनके
द्वारा निर्मित जगत्की मनोमयता, जीवका स्वरूप
और उसकी विविध सासारिक गति तथा सृष्टिके
दोष एवं मिथ्यात्वका उपदेश ... १८८
- ३५—जीवोंकी चौदह श्रेणियाँ तथा परब्रह्म परमात्मासे
ही उत्पन्न होनेके कारण सबकी ब्रह्मरूपता ... १९०
- ३६—कर्ता और कर्मकी सद्बोध्यता एवं अभिन्नता तथा
चित्त और कर्मकी एकताका प्रतिपादन ... १९२
- ३७—मनका स्वरूप तथा उसकी विभिन्न संज्ञाओंपर
विचार ... १९३
- ३८—मनके द्वारा जगत्के विस्तार तथा अज्ञानीके
उपदेशके लिये कल्पित त्रिविध आकाशका
निरूपण एवं मनको परमात्मचिन्तनमें लगानेकी
आवश्यकता ... १९५

- ३९—मनकी परमात्मरूपता, ब्रह्मकी विविध शक्ति,
सबकी ब्रह्मरूपता, मनके सकल्पसे ही सृष्टि-
विस्तार तथा वासना एवं मनके नाशसे ही
श्रेयकी प्राप्ति का प्रतिपादन ... १९६
- ४०—जगत्की चित्तरूपता, वासनायुक्त मनके दोष,
मनका महान् वैभव तथा उसे वशमें करनेका
उपाय ... १९८
- ४१—चित्तरूपी रोगकी चिकित्साके उपाय तथा मनो-
निग्रहसे लाभ ... २०१
- ४२—मनोनाशके उपायभूत वासना-त्यागका उपदेश,
अविद्या-वासनाके दोष तथा इसके विनाशके
उपायकी जिज्ञासा ... २०२
- ४३—अविद्याके विनाशके हेतुभूत आत्मदर्शनका,
विशुद्ध परमात्मस्वरूपका तथा असंकल्पसे वासना-
क्षयका प्रतिपादन ... २०४
- ४४—अविद्याकी बन्धनकारितापर आश्चर्य; चेष्टा देहमें
नहीं, देहीमें है—इसका प्रतिपादन तथा अज्ञानकी
सात भूमिकाओंका वर्णन ... २०६
- ४५—ज्ञानकी सात भूमिकाओंका विशद विवेचन २०७
- ४६—मायिक रूपका निराकरण करके सन्मात्रत्वका
प्रदर्शन, अविद्याके स्वरूपका निरूपण,
संक्षेपमें ज्ञानभूमिका एवं जीवात्माके वास्तविक
स्वरूपका वर्णन ... २१५

स्थिति-प्रकरण

- १—चित्ररूपसे जगत्का वर्णन, जगत्की स्थितिका
खण्डन करके पूर्णानन्दस्वरूप सन्मात्रकी स्थिति-
का कथन, मनको ही जगत्का कारण बताकर
उसके नाश होनेपर जगत्की शून्यताका कथन २१८
- २—स्वरूपकी विस्मृतिसे ही भेदभ्रमकी अनुभूति,
चित्तशुद्धि एवं जाग्रत् आदि अवस्थाओंके
शोधनसे ही भ्रम-निवारणपूर्वक आत्मबोधकी
प्राप्ति तथा वैराग्यमूलक विवेकसे ही मोक्षलाभ-
का वर्णन ... २२०
- ३—उपासनाओंके अनुसार फलकी प्राप्ति तथा
जाग्रत्-स्वप्न अवस्थाओंका वर्णन, मनको सत्य
आत्मामें लगानेका आदेश, मनको भावनाके
अनुसाररूप और फलकी प्राप्ति तथा भावनाके
त्यागसे विचारद्वारा ब्रह्मभावकी प्राप्ति का प्रति-
पादन ... २२२

- ४-दृढ बोध होनेपर सम्पूर्ण दोषोंके विनाश, अन्तः-
करणकी शुद्धि और विशुद्ध आत्मतत्त्वके
साक्षात्कारकी महिमाका प्रतिपादन ... २२४
- ५-शरीररूपी नगरीके सम्राट् जानीकी रागरहित
स्थितिका वर्णन ... २२५
- ६-मन और इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति तथा उनको जीतने-
से लाभ, अत्यन्त अज्ञानी और ज्ञानीके लिये
उपदेशकी व्यर्थता तथा जगत् और ब्रह्मके
स्वरूपका प्रतिपादन ... २२६
- ७-शास्त्रचिन्तन, शास्त्रीय सदाचारके सेवन तथा
शास्त्रविपरीत आचारके त्यागसे लाभ ... २२८
- ८-शास्त्रीय शुभ उद्योगकी सफलताका प्रतिपादन,
अहंकारकी बन्धकता और उनके त्यागसे मोक्षकी
प्राप्तिका वर्णन ... २२९
- ९-सर्वत्र और सभी रूपोंमें चेतनआत्माकी ही
स्थितिका वर्णन ... २३२
- १०-ज्ञानी और अज्ञानीका अन्तर, वासनाके कारण
ही कर्तृत्वका प्रतिपादन, तत्त्वज्ञानीके अकर्तापन
एवं बन्धनाभावका निरूपण ... २३३
- ११-सर्वशक्तिमान् ब्रह्मसे ही सृष्टिकी उत्पत्ति,
स्थिति और लय होनेसे सबकी परब्रह्मरूपतारा
प्रतिपादन; अत्यन्त मूढको नहीं; विवेकी जिज्ञासु-
को ही 'सर्वे ब्रह्म' का उपदेश देनेकी
आवश्यकता तथा बाजीगरके दिखाये हुए
खेलकी भ्रांति मायामय जगत्के मिथ्यात्वका
वर्णन ... २३४
- १२-दृश्यकी असत्ता और सबकी ब्रह्मरूपतारा
प्रतिपादन; मायाके दोष तथा आत्मज्ञानसे
ही उसका निवारण ... २३६
- १३-चेतनतत्त्वका ही क्षेत्रज्ञ, अहङ्कार आदिके रूपमें
विस्तार तथा अविद्याके कारण जीवोंके कर्मा-
नुसार नाना योनिषोंमें जन्मोंका वर्णन ... २३७
- १४-परमात्मनिष्ठ ज्ञानीकी दृष्टिमें संसारका निष्पान्त,
मनोमय होनेके कारण जगत्की असत्ता तथा
ज्ञानीकी दृष्टिमें सबकी ब्रह्मरूपतारा प्रतिपादन २३८
- १५-सांसारिक वस्तुओंसे वैराग्य एवं जीवन्मुक्त
महात्माओंके उत्तम गुणोंका उपदेश दारुणार
होनेवाले ब्रह्मा, ब्रह्माण्ड एवं विविध भूतोंकी
सृष्टिपरम्परा तथा ब्रह्ममें उनके अत्यन्त-
भावका कथन ... २४१

- १६-विरक्त एवं निर्विकल्पक ज्ञानी ...
सबकी स्थितिमें अन्तर, ब्रह्ममें ...
उनमें अन्तर न रहने, ...
और अन्तर्निष्ठ स्वभाव ...
स्थित होने का उद्देश्य ...
- १७-वाग्मा, अविज्ञान और ...
ग्रहों परमात्मरूपमें ...
तत्त्वज्ञानी का ज्ञान ...
- १८-परमात्मभावमें निरा ...
त्वका बोध करनेवाली ...
भोगोंमें वैराग्य का उद्देश्य ...
त्त्वमें निर्गुणता ...
- १९-राजस-गुणिकी ...
हुए पुरुषोंकी स्थिति ...
अनित्यता एवं ...
भावनाके लिये उद्देश्य ...
गुणोंसे अज्ञाने एवं ...
जीवन्मुक्त पदवी प्राप्ति का ...

उपशम-प्रकरण

- १-श्रीवसिष्ठजीका ...
ग्रहों के समान ...
में जाना और ...
तत्पर होना ...
- २-श्रीराम आदि राजकुमारोंकी ...
वर्षा, बलिष्ठता तथा ...
सभामें प्रवेश, ...
उपदेशकी प्रणाली ...
उपदेश देनेके लिये ...
- ३-संसारका ...
आत्मके ...
कथन, ...
अमरता ...
- ४-सर्वत्र ...
ग्रहोंकी ...
अज्ञानोंकी ...
उनके द्वारा ...
- ५-सिद्धि ...
एवं ...

- आत्माके विवेक-विज्ञानको सूचित करनेवाले अपने आन्तरिक उद्गार एवं निश्चयको प्रकट करना ... २५७
- ६—राजा जनकद्वारा ससारकी स्थितिपर विचार और उनका अपने चित्तको समझाना ... २५९
- ७—राजा जनककी जीवन्मुक्तरूपसे स्थिति तथा विशुद्ध विचार एवं प्रज्ञाके अद्भुत माहात्म्यका वर्णन ... २६१
- ८—चित्तकी शान्तिके उपायोंका युक्तियोंद्वारा वर्णन ... २६३
- ९—अनधिकारीको दिये गये उपदेशकी व्यर्थता, मनको जीतने या शान्त करनेकी प्रेरणा तथा तत्त्वबोधसे ही मनके उपशमका कथन; तृष्णाके दोष, वासनाशय और जीवन्मुक्तके स्वरूपका वर्णन ... २६५
- १०—जीवन्मुक्तिकी प्राप्ति करनेवाले विभिन्न प्रकारके निश्चयों तथा सब कुछ ब्रह्म ही है, इस पारमार्थिक स्थितिका वर्णन ... २६६
- ११—महापुरुषोके स्वभावका वर्णन तथा अनासक्त भावसे ससारमें विचरनेका उपदेश ... २६७
- १२—पिता-माताके शोकसे व्याकुल हुए अपने भाई पावनको पुण्यका समझाना—जगत् और उसके सम्बन्धकी असत्यताका प्रतिपादन ... २६९
- १३—पुण्यका पावनको उपदेश—अनेक जन्मोंमें प्राप्त हुए असंख्य सम्बन्धियोंकी ओरसे ममता हटाकर उन्हें आत्मस्वरूप परमात्मासे ही संतोष प्राप्त करनेका आदेश; पुण्य और पावनको निर्वाण-पदकी प्राप्ति, तृष्णा और विषय-चिन्तनके त्यागसे मनके क्षीण हो जानेपर परमपदकी प्राप्ति-का कथन ... २७०
- १४—राजा बलिके अन्तःकरणमें वैराग्य एवं विचारका उदय तथा उनका अपने पितासे पहलेके पूछे हुए प्रश्नोंका स्मरण करना ... २७२
- १५—विरोचनका बलिको भोगोंसे वैराग्य तथा विचार-पूर्वक परमात्मसाक्षात्कारके लिये उपदेश ... २७४
- १६—बलिका पिताके दिये हुए ज्ञानोपदेशके स्मरणसे संतोष तथा पहलेकी अज्ञानमयी स्थितिको याद करके खेद प्रकट करते हुए शुक्राचार्यका चिन्तन करना, शुक्राचार्यका ज्ञान और बलिके धर्म
- होकर उन्हें सारभूत सिद्धान्तका उपदेश देकर चला जाना ... २७६
- १७—राजा बलिका शुक्राचार्यके दिये हुए उपदेशपर विचार करते-करते समाधिस्थ हो जाना, दानवोंके स्मरण करनेसे आये हुए दैत्यगुरुका बलिकी सिद्धावस्थाको बताकर उनकी चिन्ता दूर करना २७८
- १८—समाधिसे जगे हुए बलिका विचारपूर्वक सम-भावसे स्थित होना, श्रीहरिका उन्हें त्रिलोकीके राज्यसे हटाकर पातालका ही राजा बनाना, उस अवस्थामे भी उनकी समतापूर्ण स्थिति तथा श्रीरामके चिन्मय स्वरूपका वर्णन ... २८१
- १९—प्रह्लादका उपाख्यान—भगवान् नृसिंहकी क्रोधाग्नि-से हिरण्यगर्गिषु आदि दैत्योंका सहार तथा प्रह्लादका विचारद्वारा अपने आपको भगवान् विष्णुसे अभिन्न अनुभव करना ... २८३
- २०—प्रह्लादके द्वारा भगवान् विष्णुकी मानसिक एवं बाह्य पूजा, उसके प्रभावसे समस्त दैत्योंको वैष्णव हुआ देख विस्मयमें पड़े हुए देवताओंका भगवान्से इसके विषयमें पूछना, भगवान्का देवताओंको सान्त्वना दे अदृश्य हो प्रह्लादके देवपूजा-गृहमें प्रकट होना और प्रह्लादद्वारा उनकी स्तुति ... २८५
- २१—प्रह्लादको भगवान्द्वारा वर-प्राप्ति, प्रह्लादका आत्मचिन्तन करते हुए परमात्माका साक्षात्कार करना और उनका स्तवन करते हुए समाधिस्थ हो जाना, तत्पश्चात् पातालकी अराजकताका वर्णन और भगवान् विष्णुका प्रह्लादको समाधि-से विरत करनेका विचार ... २८८
- २२—भगवान् विष्णुका पातालमें जाना और शङ्ख-ध्वनिसे प्रह्लादको प्रबुद्ध करके उन्हें तत्त्वज्ञानका उपदेश देना, प्रह्लादद्वारा भगवान्का पूजन, भगवान्का प्रह्लादको दैत्यराज्यपर अभिषिक्त करके कर्तव्यका उपदेश देकर क्षीरसागरको लौट जाना, आख्यानका उत्तम फल, जीवन्मुक्तोके व्युत्थानका हेतु और पुरुषार्थकी शक्तिका कथन २९४
- २३—मायाचक्रका निरूपण, चित्तनिरोधकी प्रशंसा, भगवत्प्राप्तिकी महिमा, मनकी सर्प और विषवृक्षसे तुलना, उद्दालक मुनिका परमार्थ-

- २४-महर्षि उद्दालककी साधना, तपस्या और परमात्म-प्राप्तिका कथन; सत्ता-सामान्य, समाधि और समाहितके लक्षण ... ३०६
- २५-किरातराज सुरधुका वृत्तान्त—महर्षि माण्डव्यका सुरधुके महलमें पधारना और उपदेश देकर अपने आश्रमको लौट जाना, सुरधुके आत्म-विषयक चिन्तनका वर्णन तथा उसे परमपदकी प्राप्ति ... ३१०
- २६-किरातराज सुरधु और राजर्षि पर्णाद (परिष) का संवाद ... ३१४
- २७-आत्माका संसार दुःखसे उद्धार करनेके उपायोंका कथन तथा भास और विलास नामक तपस्वियोंके वृत्तान्तका आरम्भ ... ३१८
- २८-भास और विलासकी परस्पर बातचीत और तत्त्वज्ञानद्वारा उन्हें मोक्षकी प्राप्ति, देह और आत्माका सम्बन्ध नहीं है तथा आसक्ति ही बन्धनका हेतु है—इसका निरूपण ... ३२१
- २९-संसक्ति और असंसक्तिका लक्षण, आसक्तिके भेद उनके लक्षण और फलका वर्णन, आसक्तिके त्यागसे जीवात्मा कर्म-फलसे सम्बद्ध नहीं होता—इसका कथन ... ३२४
- ३०-असङ्ग सुखमें परम शान्तिको प्राप्त पुरुषके व्यवहार-कालमें भी दुखी न होनेका प्रतिपादन, शानीकी त्रुट्यावस्था तथा देह और आत्माके अन्तरका वर्णन ... ३२७
- ३१-देहादिके संयोग-वियोगादिमें राग-द्वेष और हर्ष-शोकसे रहित शुद्ध आत्माके स्वरूपका विवेचन ३२९
- ३२-दो प्रकारके मुक्तिदायक अहंकारका और एक प्रकारके बन्धनकारक अहंकारका एवं परमात्माके स्वरूपका वर्णन ... ३३१
- ३३-मन, अहंकार, वासना और अविद्याके नाशसे मुक्ति तथा जीवन्मुक्त पुरुषके लक्षण और महिमाका प्रतिपादन ... ३३२
- ३४-मनुष्य, असुर, देव आदि योनियोंमें होनेवाले हर्ष-शोकादिसे रहित जीवन्मुक्त महात्माओंका वर्णन ... ३३५
- ३५-स्त्रीरूप तरङ्गसे युक्त संसाररूपी समुद्र, उससे तरनेके उपाय और तरनेके अनन्तर सुखपूर्वक

- विचरणका वर्णन, जीवन्मुक्त महात्माओंके गुण लक्षण और महिमा ... ३३७
- ३६-चित्तके स्पन्दनसे होनेवाली जगत्की भ्रान्ति, चित्त और प्राण-स्पन्दनका स्वरूप तथा उनके निरोधरूप योगकी सिद्धिके अनेक उपाय ... ३३९
- ३७-चित्तके उपशमके लिये ज्ञानयोगरूप उपाय एवं विवेक-विचारके द्वारा चित्तका विनाश होनेपर ब्रह्म-विचारसे परमात्माकी प्राप्ति ... ३४२
- ३८-वीतहव्य मुनिका एकाग्रताकी सिद्धिके लिये इन्द्रिय और मनको बोधित करना ... ३४४
- ३९-इन्द्रियों और मनके रहते समस्त दोषोंकी प्राप्ति तथा उनके शमनसे समस्त गुणोंकी और परमात्माकी प्राप्ति का वर्णन ... ३४६
- ४०-वीतहव्य महामुनिकी समाधि और उससे जागना, छः रात्रितक पुनः समाधि, चिरकालतक जीवन्मुक्त स्थिति, उनके द्वारा दुःख-सुकृत आदिको नमस्कार और उनका परमात्मामें विलीन हो जाना ... ३४८
- ४१-महामुनि वीतहव्यकी अंकारकी अन्तिम मात्राका अवलम्बन करके परमात्मप्राप्तिरूप मुक्तावस्थाका तथा मुक्त होनेपर उनके शरीर प्राणों और सब धातुओंका अपने-अपने उपादान कारणमें विलीन होकर मूल-प्रकृतिमें लीन होनेका वर्णन ३५०
- ४२-ज्ञानी महात्माओंके लिये आकाश-गमन आदि सिद्धियोंकी अनावश्यकताका कथन ... ३५१
- ४३-जीवन्मुक्त और विदेह-मुक्त पुरुषोंके चित्तनाशका वर्णन ... ३५३
- ४४-शरीरका कारण मन है तथा मनके कारण प्राण-स्पन्द और वासना इनका कारण विषय, विषयका कारण जीवात्मा और जीवात्माका कारण परमात्मा है—इस तत्त्वका प्रतिपादन ... ३५४
- ४५-तत्त्वज्ञान, वासनाशय और मनोनाशने परमपदकी प्राप्ति तथा मनको वशमें करनेके उपायोंका वर्णन ... ३५७
- ४६-विचारकी प्रौढता, वैराग्य एवं नृदुर्गोमे तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति और जीवन्मुक्त महात्माओंकी स्थितिका वर्णन ... ३५९
- निर्वाण-प्रकरण पूर्वार्थ
- १-श्रीवसिष्ठजीके कहनेपर श्रोताओंका सभाने उठकर दैनिक क्रिया करना तथा मुने गये विषयोंका चिन्तन करना ... ३६२

- २-श्रीरामचन्द्र आदिका महाराज वसिष्ठजीको सभामें लाना तथा महर्षि वसिष्ठजीके द्वारा उपदेष्टाका आरम्भ, चित्तके विनाशका और श्रीरामचन्द्रजीकी ब्रह्मरूपताका निरूपण ... ३६३
- ३-ब्रह्मकी जगत्कारणता और ज्ञानद्वारा मायाके विनाशका तथा श्रीवसिष्ठजीके द्वारा श्रीरामकी महिमा एवं श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा अपने परमार्थ-स्वरूपका वर्णन ... ३६५
- ४-देह और आत्माके विवेकका एवं अज्ञानीको देहमें आत्मबुद्धि और विषयोंमें सुख-बुद्धि करनेसे दुःखकी प्राप्तिका प्रतिपादन ... ३६६
- ५-अज्ञानकी महिमा और विभूतियोंका सविस्तर वर्णन ३६८
- ६-अविद्याके कार्य ससाररूप विप-लता, विद्या एवं अविद्याके स्वरूप तथा उन दोनोंसे रहित परमार्थ-वस्तुका वर्णन ... ३६९
- ७-अविद्यामूलक स्थावरयोनिके जीवोंके स्वरूपका तथा विवेकपूर्वक विचारसे अविद्याके नाशका प्रतिपादन ... ३७१
- ८-परमात्मा सर्वात्मक और सर्वातीत है—इसका प्रतिपादन एवं महात्मा पुरुषोंके लक्षण तथा आत्मकल्याणके लिये परमात्मविषयक यथार्थ ज्ञान और प्राण-निरोधरूप योगका वर्णन ... ३७२
- ९-देव-सभामें वायसराज भुशुण्डका वृत्तान्त सुनकर महर्षि वसिष्ठका उसे देखनेके लिये मेरुगिरिपर जाना, मेरु-शिखर तथा “चूत” नामक कल्पतरुका वर्णन, वसिष्ठजीका भुशुण्डसे मिलना भुशुण्डद्वारा उनका आतिथ्य-सत्कार, वसिष्ठजीका भुशुण्डसे उनका वृत्तान्त पूछना और उनके गुणोंका वर्णन करना ... ३७५
- १०-भुशुण्डका वसिष्ठजीसे अपने जन्मवृत्तान्तके प्रसङ्गमें महादेवजी तथा मातृकाओंका वर्णन करते हुए अपनी उत्पत्ति, ज्ञान-प्राप्ति और उस घोंसलेमें आनेका वृत्तान्त कहना ... ३७९
- ११-“तुम्हारी कितनी आयु है और तुम किन-किन वृत्तान्तोंका स्मरण करते हो ?” वसिष्ठजीद्वारा पूछे हुए इन प्रश्नोंका भुशुण्डद्वारा समाधान .. ३८२
- १२-जिसे मृत्यु नहीं मार सकती, उस निर्दोष महात्माकी स्थितिका, परमतत्त्वकी उपासनाका तथा तीनों लोकोंके पदार्थोंमें सुख-शान्तिके अभावका प्रतिपादन ... ३८५
- १३-प्राण-अपानकी गतिको तत्त्वतः जाननेसे मुक्ति ३८७
- १४-पूरक, रेचक, कुम्भक प्राणायामका तत्त्व जानकर अम्यास करनेसे मुक्ति और सर्वशक्तिमान् परमात्माकी उपासनाकी महिमा ... ३८८
- १५-भुशुण्डकी वास्तविक स्थितिका निरूपण, वसिष्ठजी-द्वारा भुशुण्डकी प्रशंसा, भुशुण्डद्वारा वसिष्ठजीका पूजन तथा आकाशमार्गसे वसिष्ठजीकी स्वलोकप्राप्ति ३९०
- १६-शरीर और संसारकी अनिश्चितता तथा भ्रान्ति-रूपताका वर्णन ... ३९२
- १७-संसार-चक्रके अवरोधका उपाय, शरीरकी नश्वरता और आत्माकी अविनाशिता एवं अहंकाररूपी चित्तके त्यागका वर्णन तथा श्रीमहादेवजीके द्वारा श्रीवसिष्ठजीके प्रति निर्गुण-निराकार परमात्माकी पूजाका प्रतिपादन ... ३९४
- १८-चेतन परमात्माकी सर्वात्मता ... ३९८
- १९-शुद्धचेतन आत्मा और जीवात्माके स्वरूपका विवेचन ... ३९९
- २०-संकल्प-त्यागसे द्वैतभावनाकी निवृत्ति और परम पदस्वरूप परमात्माकी प्राप्तिका प्रतिपादन ... ४००
- २१-सबके परम कारण परम पूजनीय परमात्माका वर्णन ... ४०२
- २२-परमेश्वर परमात्माकी अनन्त शक्तियों ... ४०३
- २३-सच्चिदानन्दधन परमदेव परमात्माके ध्यानरूप पूजनसे परमपदकी प्राप्ति ... ४०४
- २४-शास्त्राभ्यास और गुरुपदेशकी सफलता, ब्रह्मके नाम-भेदोंका और स्वरूपका रहस्य एवं दुःखनाशका उपाय ... ४०७
- २५-समष्टि-व्यष्ट्यात्मक जो संसार है, वह सब माया ही है—यह उपदेश देकर भगवान् श्रीशंकरका अपने वासस्थानको जाना तथा श्रीवसिष्ठजी और श्रीरामजीके द्वारा अपनी-अपनी स्थितिका वर्णन ... ४०८
- २६-ज्ञानकी प्राप्तिके लिये वासना, आसक्ति और अज्ञानके नाशसे मनके विनाशका वर्णन ... ४१०
- २७-शिलाके रूपमें ब्रह्मके स्वरूपका प्रतिपादन ... ४११
- २८-परमात्माके स्वरूपका और अविद्याके अत्यन्त अभावका निरूपण ... ४१३

- २९-जीवात्माका अपनी भावनासे लिङ्गदेहात्मक
पुर्यष्टक बनकर अनेक रूप धारण करना ... ४१४
- ३०-पुर्यष्टक बने हुए जीवात्माको तत्त्वज्ञानसे परब्रह्म
परमात्माकी प्राप्ति होनेका कथन ... ४१५
- ३१-श्रीकृष्णार्जुन-आख्यानका आरम्भ-अर्जुनके
प्रति भगवान् श्रीकृष्णद्वारा आत्माकी नित्यता-
का प्रतिपादन ... ४१७
- ३२-कर्तृत्वाभिमानसे रहित पुरुषके कर्मोंसे लिप्त
न होनेका निरूपण एवं सङ्गत्याग, ब्रह्मार्पण,
ईश्वरार्पण, सन्यास, ज्ञान और योगकी
परिभाषा ... ४१८
- ३३-श्रीकृष्णके द्वारा अर्जुनके प्रति कर्म और ज्ञानके
तत्त्व-रहस्यका प्रतिपादन ... ४२१
- ३४-श्रीकृष्णके द्वारा अर्जुनके प्रति देहकी नश्वरता,
आत्माकी अविनाशिता, मनुष्योंकी मरण-
स्थिति और स्वर्ग-नरकादिकी प्राप्ति एवं
जीवात्माके संसारभ्रमणमें कारणरूप वासनाके
नाशसे मुक्तिका प्रतिपादन ... ४२२
- ३५-श्रीभगवान्के द्वारा अर्जुनके प्रति जीवन्मुक्त
अवस्था और जगद्रूप चित्रका वर्णन एवं
वासनारहित और ब्रह्मस्वरूप होकर स्थित रहनेका
उपदेश तथा इस उपदेशको सुनकर तत्त्वज्ञानके
द्वारा अर्जुनकी अविद्यासहित वासनाका और
मोहका नाश हो जाना ... ४२४
- ३६-परमात्माकी नित्य सत्ता, जगत्की असत्ता एवं
जीवन्मुक्त-अवस्थाका निरूपण ... ४२६
- ३७-परब्रह्म परमात्माके सत्ता-सामान्य स्वरूपका
प्रतिपादन ... ४२७
- ३८-संसारके मिथ्यात्वका दिग्दर्शन तथा मोहसे
जीवके पतनका कथन ... ४२८
- ३९-चार प्रकारका मौन और उनमेंसे जीवन्मुक्त
ज्ञानीके सुपुप्त मौनकी श्रेष्ठता ... ४२९
- ४०-सांख्ययोग और अष्टाङ्गयोगके द्वारा परमपदकी
प्राप्ति ... ४२९
- ४१-वेताल और राजाका संवाद ... ४३१
- ४२-वेतालकृत छः प्रश्नोंका राजाद्वारा समाधान ... ४३२
- ४३-भगीरथके गुण, उनका विवेकपूर्वक वैराग्य
और अपने गुरु त्रितलके साथ संवाद ... ४३३
- ४४-राजा भगीरथका सर्वस्वत्याग, भिक्षाटन और

- गुरु त्रितलके साथ निवास, भगीरथको पुनः
राज्यप्राप्ति और ब्रह्मा, रुद्र आदिनी
आराधना करनेसे गङ्गाजीका भूतलपर अवतरण ४३५
- ४५-शिखिध्वज और चूडालाके आख्यानका
आरम्भ, शिखिध्वजके गुणोंका तथा चूडालाके
साथ विवाह और क्रीडाका वर्णन ... ४३७
- ४६-क्रमसे उन दोनोंकी वैराग्य एवं अध्यात्म-
ज्ञानमें निष्ठा तथा चूडालाको यथार्थ ज्ञानसे
परमात्माकी प्राप्ति ... ४३९
- ४७-चूडालाको अपूर्व गोभासम्पन्न देखकर राजा
शिखिध्वजका प्रसन्न होना और उससे
वार्तालाप करना ... ४४१
- ४८-राजा शिखिध्वजका चूडालाके वचनोंको
अयुक्त बतलाना, चूडालाका एकान्तमें
योगाभ्यास करना एवं श्रीरामचन्द्रजीके पूछने-
पर श्रीवसिष्ठजीके द्वारा कुण्डलिनीशक्तिका
तथा विभिन्न शरीरोंमें जीवात्माकी स्थितिका
वर्णन ... ४४२
- ४९-आधि और व्याधिके नाशका तथा निद्रिका
और सिद्धोंके दर्शनका उपाय ... ४४४
- ५०-ज्ञानसाध्य वस्तु और योगियोंकी परकाय-
प्रवेश-सिद्धिका वर्णन ... ४४७
- ५१-चूडालाकी सिद्धिका वैभव, गुरुपदेशकी
सफलतामें किराटका आख्यान, शिखिध्वजका
वैराग्य, चूडालाका उन्हें समझाना, राजा
शिखिध्वजका आधी रातके समय राजमहलसे
निकलकर चल देना और मन्दराचलके काननमें
कुटिया बनाकर निवास करना ... ४४८
- ५२-सोकर उठी हुई चूडालाके द्वारा राजानी खोज-
बनमें राजाके दर्शन और राजाके भविष्यका
विचार करके चूडालाका लौटना, नगरमें
आकर राज्यशासन करना. तदनन्तर कुछ
समय बाद राजाको ज्ञानोपदेश देनेके लिये
ब्राह्मणकुमारके वेषमें उनके पास जाना,
राजाद्वारा उसका स्त्कार और परस्पर वार्तालाप-
के प्रसङ्गमें कुम्भद्वारा कुम्भकी उत्पत्ति, श्रद्धा
और ब्रह्माजीके साथ उनके समागमका वर्णन ४५२
- ५३-राजा शिखिध्वजद्वारा कुम्भनी प्रशंसा. कुम्भना
ब्रह्माजीके द्वारा किये हुए ज्ञान और कर्मके

- विवेचनको सुनाना, राजाद्वारा कुम्भका गिष्यत्व-
स्वीकार ... ४५७
- ५४-चिरकालकी तपस्यासे प्राप्त हुई चिन्तामणिका
त्याग करके मणिवुद्धिसे कौचको ग्रहण करनेकी
कथा तथा विन्ध्यगिरिनिवासी हाथीका आख्यान ४५९
- ५५-कुम्भद्वारा चिन्तामणि और कौचके आख्यानके
तथा विन्ध्यगिरिनिवासी हाथीके उपाख्यानके
रहस्यका वर्णन ... ४६१
- ५६-कुम्भकी वाते सुनकर सर्वत्यागके लिये उद्यत हुए
राजा शिखिध्वजद्वारा अपनी सारी उपयोगी
वस्तुओंका अग्निमें झोंकना, पुनः देहत्यागके
लिये उद्यत हुए राजाको कुम्भद्वारा
चित्त-त्यागका उपदेश ... ४६३
- ५७-चित्तरूपी वृक्षको मूलसहित उखाड़ फेंकनेका
उपाय और अविद्यारूप कारणके अभावसे देह
आदि कार्यके अभावका वर्णन ... ४६७
- ५८-जगत्के अत्यन्ताभावका, राजा शिखिध्वजको
परम शान्तिकी प्राप्ति तथा जाननेयोग्य
परमात्माके स्वरूपका प्रतिपादन ... ४६९
- ५९-चित्त और ससारके अत्यन्त अभावका तथा
परमात्माके भावका निरूपण ... ४७२
- ६०-ब्रह्मसे जगत्की पृथक् सत्ताका निषेध तथा
जन्म आदि विकारोंसे रहित ब्रह्मकी स्वतः
सत्ताका विधान ... ४७४
- ६१-राजा शिखिध्वजकी जानमें दृढ स्थिति तथा
जीवन्मुक्तिमें चित्तराहित्य एवं तत्त्वस्थितिका
वर्णन ... ४७५
- ६२-कुम्भके अन्तर्हित हो जानेपर राजा शिखिध्वजका
कुछ कालतक विचार करनेके पश्चात्
समाधिस्थ होना, चूडालाका घर जाकर तीन
दिनके बाद पुनः लौटना, राजाके शरीरमें
प्रवेश करके उन्हें जगाना और राजाके साथ
उसका वार्तालाप ... ४७७
- ६३-कुम्भ और शिखिध्वजका परस्पर सौहार्द,
चूडालाका राजासे आज्ञा लेकर अपने नगरमें
आना और उदास-मन होकर पुनः राजाके
पास लौटना, राजाके द्वारा उदासीका कारण
पूछनेपर चूडालाद्वारा दुर्वासाके शापका कथन
और चूडालाका दिनमें कुम्भरूपसे और
रातमें स्त्रीरूपसे राजा शिखिध्वजके साथ विचरण ४८०

- ६४-महेन्द्रपर्वतपर अग्निके साक्ष्यमें मदनिका
(चूडाला) और शिखिध्वजका विवाह, एक
सुन्दर कन्दरामें पुष्प-शय्यापर दोनोंका समागम,
शिखिध्वजकी परीक्षाके लिये चूडालाद्वारा
मायाके बलसे इन्द्रका प्रकट्य, इन्द्रका राजासे
स्वर्ग चलनेका अनुरोध, राजाके अस्वीकार
करनेपर परिवारसहित इन्द्रका अन्तर्धान होना ४८३
- ६५-राजा शिखिध्वजके क्रोधकी परीक्षा करनेके लिये
चूडालाका मायाद्वारा राजाको जारसमागम
दिखाना और अन्तमें राजाके विकारयुक्त न
होनेपर अपना असली रूप प्रकट करना ... ४८५
- ६६-ध्यानसे सब कुछ जानकर राजा शिखिध्वजका
आश्चर्यचकित होना और प्रशंसापूर्वक
चूडालाका आलिङ्गन करना तथा उसके साथ
रात बिताना, प्रातःकाल सकल्पजनित सेनाके
साथ दोनोंका नगरमें आना और दस हजार
वर्षोंतक राज्य करके विदेहमुक्त होना ... ४८८
- ६७-वृहस्पतिपुत्र कचकी सर्वत्याग-साधनसे
जीवन्मुक्ति, मिथ्या पुरुषकी अख्यायिका और
उसका तात्पर्य ... ४९१
- ६८-सब कुछ ब्रह्म ही है—इसका प्रतिपादन ... ४९६
- ६९-भृङ्गीशके प्रति महादेवजीके द्वारा महाकर्ता,
महाभोक्ता और महात्यागीके लक्षणोंका निरूपण ४९७
- ७०-सर्वथा विलीन हुए या विलीन होते हुए
अहंकार-रूप चित्तके लक्षण ... ४९८
- ७१-महाराज मनुका इश्वरके प्रति, 'मैं कौन हूँ,
यह जगत् क्या है'—यह बताते हुए देहमें
आत्मबुद्धिका परित्याग कर परमात्मभावमें स्थित
होनेका उपदेश ... ४९९
- ७२-सात भूमिकाओंका, जीवन्मुक्त महात्मा पुरुषके
लक्षणोंका एवं जीवको संसारमें फँसानेवाली और
ससारसे उद्धार करनेवाली भावनाओंका वर्णन
करके मनु महाराजका ब्रह्मलोकमें जाना ... ५००
- ७३-श्रीवसिष्ठजीके द्वारा श्रीरामचन्द्रजीके प्रति
जीवन्मुक्त पुरुषकी विशेषता, रागसे बन्धन और
वैराग्यसे मुक्ति तथा तुर्यपद और ब्रह्मके
स्वरूपका प्रतिपादन ... ५०३
- ७४-योगकी सात भूमिकाओंका अभ्यासक्रम और
लक्षण, योगभ्रष्ट पुरुषकी गति एवं महान्

अनर्थकारिणी हयिनीरूप इच्छाके स्वरूप और
उसके नाशके उपाय ... ५०५

७५-भरद्वाज मुनिके उत्कण्ठापूर्वक प्रदन करनेपर
श्रीवाल्मीकिजीके द्वारा जगत्की असत्ता और
परमात्माकी सत्ताका प्रतिपादन करते हुए
कल्याणकारक उपदेश ... ५०९

७६-श्रीवाल्मीकिजीके द्वारा लय-क्रमका और
भरद्वाजजीके द्वारा अपनी स्थितिका वर्णन,
वाल्मीकिजीद्वारा मुक्तिके उपायोंका कथन,
श्रीविश्वामित्रजीद्वारा भगवान् श्रीरामके अवतार
ग्रहण करनेका प्रतिपादन एवं ग्रन्थश्रवणकी
महिमा ... ५११

निर्वाण-प्रकरण (उत्तरार्ध)

१-कल्पना या संकल्पके त्यागका स्वरूप, कामना
या संकल्पसे शून्य होकर कर्म करनेकी प्रेरणा,
हृदयकी असत्ता तथा तत्त्वज्ञानसे मोक्षका
प्रतिपादन ... ५१६

२-समूल कर्मत्यागके स्वरूपका विवेचन ... ५१७

३-संसारके मूलभूत अहभावका आत्मबोधके द्वारा
उच्छेद करके परमात्मस्वरूपसे स्थित होनेका
उपदेश ... ५१८

४-उपदेशके अधिकारीका निरूपण करते हुए
वसिष्ठजीके द्वारा भुशुण्ड और विद्याधरके
संवादका उल्लेख—विद्याधरका इन्द्रियोंकी
विषयपरायणताके कारण प्राप्त हुए दुःखोंका
वर्णन करके उनसे अपने उद्धारके लिये
प्रार्थना करना ... ५१९

५-भुशुण्डजीद्वारा विद्याधरको उपदेश—हृदय-
प्रपञ्चकी असत्ता बताते हुए संसार-वृक्षका
निरूपण ... ५२२

६-संसार-वृक्षके उच्छेदके उपाय, प्रतीयमान
जगत्की असत्ता, ब्रह्ममें ही जगत्की प्रतीति
तथा सर्वत्र ब्रह्मकी सत्ताका प्रतिपादन ... ५२३

७-चिन्मय परब्रह्मके सिवा अन्य वस्तुकी सत्ताका
निराकरण, जगत्की निःसारता तथा सत्सङ्ग,
सत्-शास्त्र-विचार और आत्मप्रयत्नके द्वारा
अविद्याके नाशका प्रतिपादन ... ५२४

८-त्रसरेणुके उदरमें इन्द्रका निवास और उनके
गृह, नगर, देश, लोक एवं त्रिलोकके
साम्राज्यकी कल्पनाका विस्तार ... ५२५

९-इन्द्र-कुलमें उत्पन्न हुए एक इन्द्रका विचार-
दृष्टिसे परमात्मतत्त्वका साम्राज्यकार करके इस
त्रिलोकीके इन्द्रपदपर प्रनिष्ठित होना तथा
अहभावनाके निवृत्त होनेसे संसार-भ्रमके
मूलोच्छेदका कथन ... ५२६

१०-शुद्ध चित्तमें थोड़ेसे ही उपदेशसे महान्
प्रभाव पड़ता है, यह बतानेके लिये कहे गये
भुशुण्डवर्णित विद्याधरके प्रमद्वक्ता उपसहार,
जीवन्मुक्त या विदेहमुक्तके अहंकारका नाश
हो जानेसे उसे संसारकी प्राप्ति न होनेका
कथन ... ५२७

११-मृत पुरुषके प्राणोंमें स्थित जगत्के आकाशमें
भ्रमणका वर्णन तथा परब्रह्ममें जगत्की
असत्ताका प्रतिपादन ... ५२८

१२-जीवके स्वरूप, स्वभाव तथा विराट् पुरुषका
वर्णन ... ५२९

१३-जगत्की संकल्परूपता, अन्यथादर्शनरूप जीव-
भाव तथा अहभावनारूप महान्त्रिके भेदनसे
ही मोक्षकी प्राप्ति का कथन और ज्ञानत्रयके
लक्षणोंका वर्णन ... ५३०

१४-ज्ञानीके लक्षण, जीवके वन्धन और मोक्षका
स्वरूप, ज्ञानी और अज्ञानीकी स्थितिमें अन्तर,
हृदयकी असत्ता तथा परब्रह्मकी सत्ताका
प्रतिपादन ... ५३१

१५-मरुभूमिके मार्गमें मिले हुए महान्
वनमें महर्षि वसिष्ठ और मङ्गिका समागम एवं
संवाद ... ५३३

१६-मङ्गिके द्वारा संसार, लौकिक सुख, मन, बुद्धि
और वृष्णा आदिके दोषों तथा उनसे होनेवाले
कष्टोंका वर्णन और वसिष्ठजीसे उपदेश देनेके
लिये प्रार्थना ... ५३५

१७-संसारके चार बीजोंका वर्णन और परमात्मके
तत्त्वज्ञानसे ही इन बीजोंके विनाशपूर्वक मोक्षका
प्रतिपादन ... ५३६

१८-भावना और वासनाके कारण संसार-दुःखकी
प्राप्ति तथा विवेकसे उत्पन्न शान्ति, सर्वत्र
ब्रह्मसत्ताका प्रतिपादन एवं मङ्गिके मोक्ष-
निवारण ... ५३७

- १-आत्मा या ब्रह्मकी समता, सर्वरूपता तथा द्वैतशून्यताका प्रतिपादन, जीवात्माकी ब्रह्म-भावनासे ससार-निवृत्तिका वर्णन ... ५३८
- २-परमार्थ तत्त्वका उपदेश और स्वरूपभूत परमात्म-पदमें प्रतिष्ठित रहते हुए व्यवहार करते रहनेका आदेश देते हुए वसिष्ठजीका श्रीरामके प्रश्नोंका उत्तर देना तथा ससारी मनुष्योंको आत्मज्ञान एवं मोक्षके लिये प्रेरित करना ... ५३९
- ३-निर्वाणकी स्थितिका तथा 'मोक्ष स्वाधीन है' इस विषयका सयुक्तिक वर्णन ... ५४२
- ४-जीवकी बहिर्मुखताके निवारणसे भ्रान्तिकल्पना-के निवर्तक उपाय तथा परलोककी चिकित्साका वर्णन ... ५४४
- ५-जगत्के स्वरूपका विवेचन और ब्रह्मके स्वरूपका सविस्तर वर्णन ... ५४६
- ६-जीवन्मुक्तिकी प्रशंसा तथा इच्छा ही बन्धन है और इच्छाका त्याग ही मुक्ति है, इसका सविस्तर वर्णन और उससे छूटनेके उपायका निरूपण ... ५४८
- ७-तत्त्वज्ञान हो जानेपर इच्छा उत्पन्न होती ही नहीं और यदि कहीं उत्पन्न होती-सी दीखे तो वह ब्रह्मस्वरूप होती है—इसका सयुक्तिक वर्णन ... ५५०
- ८-चेतन ही जगत् है—इसका तथा तत्त्वज्ञानी और जगत्के स्वरूपका वर्णन ... ५५२
- ९-जीवन्मुक्तके द्वारा जगत्के स्वरूपका ज्ञान, स्वभावका लक्षण तथा विश्व और विश्वेश्वरकी एकता और स्वात्मभूत परमेश्वरकी पूजाका वर्णन ५५३
- १०-जगत्की असारताका निरूपण करके तत्त्वज्ञानसे उसके विनाशका वर्णन ... ५५५
- ११-प्राणियोंके भ्रान्त हुए मनरूपी मृगके विश्रामके लिये समाधिरूपी कल्पद्रुमकी उपयोगिताका वर्णन ... ५५७
- १२-ध्यान-वृक्षपर चढ़नेका क्रम और उत्तरोत्तर परमोच्च स्थानपर आरुढ़ होते हुए परमानन्द-स्वरूपकी प्राप्ति का वर्णन ... ५६०
- १३-ध्यानरूपी कल्पद्रुमके फलके आस्वादनसे मनकी स्थितिका तथा मुक्तिके विभिन्न साधनोंका वर्णन ... ५६२
- १४-वैराग्यके दृढ़ हो जानेपर पुरुषकी स्थिति, आत्माद्वारा विवेक नामक दूतका भेजा जाना, विवेकज्ञानसम्पन्न पुरुषकी महिमा तथा जीवके सात रूपोंका वर्णन ... ५६४
- १५-दृश्य जगत्की असत्ता, सबकी एकमात्र ब्रह्म-रूपता तथा तत्त्वज्ञानसे होनेवाले लाभका वर्णन ५६७
- १६-सृष्टिकी असत्यता और एकमात्र अखण्ड ब्रह्म-सत्ताका प्रतिपादन ... ५६८
- १७-परमात्मामें सृष्टिभ्रमकी असम्भवता, पूर्णब्रह्मके स्वरूपका निरूपण तथा सबकी ब्रह्मरूपताका प्रतिपादन ... ५६९
- १८-ब्रह्ममें ही जगत्की कल्पना तथा जगत्का ब्रह्मसे अभेद, पाषाणोपाख्यानका आरम्भ, वसिष्ठजीका लोकगतिसे विरक्त हो सुदूर एकान्तमें कुटी बनाकर सौ वर्षोंतक समाधि लगाना ... ५७०
- १९-अहंकाररूपी पिशाचकी शान्तिका उपाय—सृष्टिके कारणका अभाव होनेसे उसकी असत्ता तथा चिन्मय ब्रह्मकी ही सृष्टिरूपताका प्रतिपादन ... ५७२
- २०-समाधिकालमें वसिष्ठजीके द्वारा अनन्त चेतनाकाशमें असंख्य ब्रह्माण्डोंका अवलोकन ... ५७३
- २१-श्रीवसिष्ठजीका समाधिकालमें अपनी स्तुति करनेवाली स्त्रीका अवलोकन और उसकी उपेक्षा करके अनेक विचित्र जगत्का दर्शन करना तथा महाप्रलयके समय सब जीवोंके प्रकृति-लीन हो जानेपर पुनः किसको सृष्टिका ज्ञान होता है, श्रीरामके इस प्रश्नका उत्तर देना ... ५७४
- २२-वसिष्ठजीके द्वारा चिदाकाशरूपसे देखे गये जगत्की अपनेसे अभिन्नताका कथन, आर्यापाठ करनेवाली स्त्रीके कार्य तथा सम्भाषण आदिके विषयमें श्रीरामके प्रश्न और वसिष्ठजीके उत्तर-का वर्णन ... ५७६
- २३-स्वप्नजगत्की भी ब्रह्मरूपता एवं सत्यताका प्रतिपादन ... ५७७
- २४-श्रीवसिष्ठजीके पूछनेपर विद्याधरीके द्वारा अपने जीवन-वृत्तान्तका वर्णन, अपनी युवावस्थाके व्यर्थ बीतनेका उल्लेख ... ५७८
- २५-विद्याधरीका वैराग्य और अपने तथा पतिके लिये तत्त्वज्ञानका उपदेश देनेके हेतु उसकी वसिष्ठ मुनिसे प्रार्थना ... ५८०

- ४४—श्रीवसिष्ठजीका विद्याधरीके साथ लोकालोक पर्वतपर पाषाणशिलाले पास पहुँचना; उस शिलामें उन्हें विद्याधरीकी बतायी हुई सृष्टिका दर्शन न होना; विद्याधरीका इसमें उनके अभ्यासाभावको कारण बताकर अभ्यासकी महिमाका वर्णन करना ... ५८२
- ४५—श्रीवसिष्ठजीके द्वारा आतिवाहिक शरीरमें आधिभौतिकताके भ्रमका निराकरण ... ५८४
- ४६—विद्याधरीका पाषाण-जगत्के ब्रह्माजीको ही अपना पति बताना और उन्हें समाधिसे जगाना; उनके और देवतादिके द्वारा वसिष्ठजीका स्वागत-सत्कार; वसिष्ठजीके पूछनेपर ब्रह्माजीका उन्हें अपने यथार्थ स्वरूपका परिचय देना और उस कुमारी नारीको वासनाकी देवी बताना ... ५८५
- ४७—पाषाण-जगत्के ब्रह्माद्वारा वासनाकी ध्येयमुखता एवं आत्मदर्शनकी इच्छा बताकर शिलाकी चित्तिरूपता तथा जगत्की परमात्मसत्तासे अभिन्नताका प्रतिपादन करके वसिष्ठजीको अपने जगत्में जानेके लिये प्रेरित करना ... ५८७
- ४८—पाषाण-शिलाले भीतर बसे हुए ब्रह्माण्डके महाप्रलयका वर्णन तथा ब्रह्माके संकल्पके उपसहारसे सम्पूर्ण जगत्का सहार क्यों होता है, इसका विवेचन ... ५८८
- ४९—ब्रह्मा और जगत्की एकताका स्थापन तथा द्वादश सूर्योंके उदयसे जगत्के प्रलयका रोमाञ्चकारी वर्णन ... ५९०
- ५०—प्रलयकालके मेघोंद्वारा भयानक वृष्टि होनेसे एकार्णवकी वृद्धि तथा प्रलयाग्निका वृद्धि जाना ... ५९२
- ५१—बढ़ते हुए एकार्णवका तथा परिवारसहित ब्रह्माके निर्वाणका वर्णन ... ५९३
- ५२—ब्रह्मलोकवासियों तथा द्वादश सूर्योंका निर्वाण; अहंकाराभिमानी रुद्रदेवका आविर्भाव; उनके अवयवों तथा आयुधका विवेचन; उनके द्वारा एकार्णवके जलका पान तथा शून्य ब्रह्माण्डकी चेतनाकाशरूपताका प्रतिपादन ... ५९५
- ५३—रुद्रकी छायारूपिणी कालरात्रिके स्वरूप तथा ताण्डव-नृत्यका वर्णन ... ५९७
- ५४—रुद्र और काली आदिके रूपमें चिन्मय

- परमात्मसत्ताकी ही स्फूर्तिका प्रतिपादन तथा सच्चिदानन्दधनका विलाम ही रुद्रदेवका नृत्य है—इसका कथन ... ५९९
- ५५—शिव और शक्तिके यथार्थ स्वरूपका विवेचन ... ६००
- ५६—प्रकृतिरूपा कालरात्रिके परमतत्त्व शिवमें लीन होनेका वर्णन ... ६०२
- ५७—रुद्रदेवका ब्रह्माण्डखण्डको निगलकर निराकार चिदाकाशरूपसे स्थित होना तथा वसिष्ठजीका उस पाषाण-शिलाले अन्य भागमें भी नूतन जगत्को देखना और पृथ्वीकी धारणाके द्वारा पार्थिव जगत्का अनुभव करना ... ६०३
- ५८—श्रीवसिष्ठजीके द्वारा जल और तेजस्-तत्त्वकी धारणासे प्राप्त हुए अनुभवका उल्लेख ... ६०४
- ५९—धारणाद्वारा वायुरूपसे स्थित हुए वसिष्ठजीका अनुभव ... ६०६
- ६०—कुटीमें लौटनेपर वसिष्ठजीको अपने शरीरकी जगह एक ध्यानस्थ सिद्धका दर्शन; उनके संकल्पकी निवृत्तिमें कुटीका उपसहार; सिद्धका नीचे गिरना और वसिष्ठजीसे उसका अपने वैराग्यपूर्ण जीवनका वृत्तान्त बताना ... ६०७
- ६१—श्रीवसिष्ठजी और सिद्धका आकाशमें अभीष्ट स्थानोंको जाना; वसिष्ठजीका मनोमय देखने सिद्धादि लोकोंमें भ्रमण करना; श्रीवसिष्ठजीका अपनी सत्य-संकल्पताके कारण सबके दृष्टियन्त्रों से आना; व्यवहारपरायण होना तथा 'परिधिव वसिष्ठ' आदि संज्ञाओंको प्राप्त करना; पाषाणोपाख्यानकी समाप्ति और सबकी चिन्मय ब्रह्मरूपताका प्रतिपादन ... ६११
- ६२—परमपदके विषयमें विभिन्न मतवदियोंके कथनकी सत्यताका प्रतिपादन ... ६१४
- ६३—तत्त्वज्ञानी संतोंके गोल-स्वभावका वर्णन तथा सत्त्वज्ञका महत्त्व ... ६१५
- ६४—सत्का विवेचन और देहात्मवादियोंके मनन निराकरण ... ६१६
- ६५—सबकी चिन्मात्ररूपताका निरूपण तथा ज्ञानी महात्माके लक्षणोंका वर्णन ... ६१७
- ६६—इस शास्त्रके विचारकी अवश्यकता तथा हृत्ते होनेवाले लाभका प्रतिपादन; दैत्य

- और आत्मबोधके लिये प्रेरणा तथा विचारद्वारा
वासनाको क्षीण करनेका उपदेश ... ६२०
- ६७—मोक्षके स्वरूप तथा जाग्रत् और स्वप्नकी
समताका निरूपण ... ६२१
- ६८—चिदाकाशके स्वरूपका प्रतिपादन तथा
जगत्की चिदाकाशरूपताका वर्णन ... ६२२
- ६९—राजा विपश्चित्के सामन्तोंका वध, उत्तर
दिशाके सेनापतिका घायल होकर आना तथा
शत्रुओंके आक्रमणसे राजपरिवार और
प्रजामें घबराहट ... ६२३
- ७०—राजा विपश्चित्का अपने मस्तककी आहुतिसे
अग्निदेवको संतुष्ट करके चार दिव्य रूपोंमें
प्रकट होना ... ६२५
- ७१—चारों विपश्चित्तोंका शत्रुओंके साथ युद्ध,
भागती हुई शत्रुसेनाका पीछा करते हुए उनका
समुद्र-तटतक जाना ... ६२६
- ७२—विपश्चित्के अनुचरोंका उन्हें आकाश, पर्वत,
पर्वतीय ग्राम, मेघ, कुत्ते, कौए और कोकिल
आदिको दिखाकर अन्योक्तियोंद्वारा विशेष
अभिप्राय सूचित करना ... ६२७
- ७३—सरोवर, भ्रमर और हसविप्रयक अन्योक्तियों ... ६३१
- ७४—वगुले, जलकाक, मोर और चातकसे सम्बन्ध
रखनेवाली अन्योक्तियों ... ६३२
- ७५—वायु, ताड़, पलाश, कनेर, कल्पवृक्ष, वनस्थली
और चम्पकवनका वर्णन करते हुए सहचरोंका
महाराजसे राजाओंकी भेंट स्वीकार करके
उन्हें विभिन्न मण्डलोंकी शासनव्यवस्था
सौंपनेके लिये अनुरोध करना तथा विपश्चित्तों-
का अग्निसे वरदान प्राप्त करके दृश्यकी अन्तिम
सीमा देखनेके लिये उद्यत होना ... ६३३
- ७६—चारों विपश्चित्तोंका समुद्रमें प्रवेग और प्रत्येक
दिशामें उनकी पृथक्-पृथक् यात्राका वर्णन ... ६३५
- ७७—विपश्चित्तोंके विहारका तथा जीवन्मुक्तोंकी
सर्वात्मरूप स्थितिका वर्णन ... ६३६
- ७८—मरे हुए विपश्चित्तोंके ससार-भ्रमणका तथा
उत्तर दिशागामी विपश्चित्के भ्रमणका विशेष
रूपसे वर्णन ... ६३८
- ७९—शेष दो विपश्चित्तोंके वृत्तान्तका वर्णन तथा
भृगरूपमें श्रीरामचन्द्रजीको प्राप्त हुए एक
विपश्चित्का राजसभामें लाया जाना ... ६४०
- ८०—श्रीवसिष्ठजीके ध्यानसे उत्पन्न हुई अग्निमें मृगके
प्रवेशका तथा उसके विपश्चित्-देहकी प्राप्तिका
वर्णन ... ६४१
- ८१—प्राणियोंकी उत्पत्तिके दो भेद, मच्छरके मृग-
योनिसे छूटकर व्याधरूपसे उत्पन्न होनेपर उसे
एक मुनिका ज्ञानोपदेश ... ६४३
- ८२—पाण्डित्यकी प्रशंसा, चित् ही जगत् है—इसका
युक्तिपूर्वक समर्थन ... ६४५
- ८३—मुनिका व्याधके प्रति बहुतसे प्राणियोंको
एक साथ सुख-दुःखकी प्राप्तिके निमित्तका
निरूपण करना ... ६४६
- ८४—मुनिके उपदेशसे आत्मज्ञानकी प्राप्ति, पूर्वदेहमें
गमनकी असमर्थताके विषयमें प्रश्न करनेपर देह
आदिके भस्म होनेके प्रसङ्गमें मुनिके आश्रम और
दोनों शरीरोंके जलने तथा वायुद्वारा उस अग्निके
शान्त होनेका वर्णन ... ६४८
- ८५—व्याध और उस मुनिके वार्तालापके प्रसङ्गमें
जीवन्मुक्त शरीरके स्वरूपका वर्णन तथा अभ्यास-
की प्रशंसा ... ६५०
- ८६—मुनिको परमपदकी प्राप्ति, व्याधके महागवका वर्णन,
अग्निका स्वर्गलोक-गमन, भासद्वारा आत्मकथा-
का वर्णन तथा बहुतसे आश्रयोंका वर्णन करके
आत्मतत्त्वका निरूपण ... ६५२
- ८७—राजा दशरथका विपश्चित्को पुरस्कार देनेकी
आज्ञा देते हुए सभाको विसर्जित करना, दूसरे
दिन सभामें वसिष्ठजीद्वारा कथाका आरम्भ,
ब्रह्मके वर्णनद्वारा अविद्याके निराकरणके उपाय,
जितेन्द्रियकी प्रशंसा और इन्द्रियोंपर विजय पाने-
की युक्तियाँ ... ६५४
- ८८—दृश्यजगत्की चैतन्यरूपता, अनिर्वचनीयता,
असत्ता तथा ब्रह्मसे अभिन्नताका प्रतिपादन ... ६५७
- ८९—जीवन्मुक्त तथा परमात्मामें विश्रान्त पुरुषके
लक्षण तथा आत्मज्ञानीके सुखपूर्वक शयनका कथन ... ६५८
- ९०—जीवन्मुक्तके स्वकर्म नामक मित्रके स्त्री, पुत्र
आदि परिवारका परिचय तथा उस मित्रके साथ
रहनेवाले उस महात्माके स्वभावसिद्ध गुणोंका
उल्लेख, तत्त्वज्ञानीकी स्थिति, जगत्की ब्रह्मरूपता
तथा समस्तवादियोंके द्वारा ब्रह्मके ही प्रति-
पादनका कथन ... ६५९

- ९१—निर्वाण अथवा परमपदका स्वरूप, ब्रह्ममें जगत्-की सत्ताका खण्डन, चिदाकाशके ही जगद्रूपसे स्फुरित होनेका कथन, ब्रह्मके उन्मेष और निमेष ही सृष्टि और प्रलय हैं, मन जिसमें रस लेता है वैसा ही बनता है, चिदाकाश अपनेको ही दृश्य-रूपसे देखता है तथा अज्ञानसे ही परमात्मामें जगत्की स्थिति प्रतीत होती है—इसका प्रतिपादन ६६१
- ९२—सृष्टिकी ब्रह्मरूपताका प्रतिपादन ... ६६२
- ९३—श्रीरामका कुन्ददन्त नामक ब्राह्मणके आगमनका प्रसङ्ग उपस्थित करना और वसिष्ठजीके पूछनेपर कुन्ददन्तका अपने सग्यकी निवृत्ति तथा तत्त्व-ज्ञानकी प्राप्तिको स्वीकार करते हुए अपना अनुभव बताना ... ६६३
- ९४—सब कुछ ब्रह्म है, जगत् वस्तुतः असत् है, वह ब्रह्मका संकल्प होनेसे उससे भिन्न नहीं है, जीवात्माको अज्ञानके कारण ही जगत्की प्रतीति होती है—इसका प्रतिपादन ... ६६५
- ९५—श्रीरामजीके विविध प्रश्न और श्रीवसिष्ठजीके द्वारा उनके उत्तर .. ६६६
- ९६—अज्ञानसे ब्रह्मका ही जगत् रूपसे भान होता है वास्तवमें जगत्का अत्यन्ताभाव है और एकमात्र ब्रह्म ही विराजमान है, इस तत्त्वका प्रतिपादन ६७२
- ९७—श्रीरामचन्द्रजीके मुखसे शानी महात्माकी स्थिति-का एव अपने परब्रह्मस्वरूपका वर्णन ... ६७२
- ९८—श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा बोधके पश्चात् होनेवाली गान्त एव संकल्पशून्य स्थितिका वर्णन ... ६७३
- ९९—श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा जगत्की असत्ता एव सर्व ब्रह्मके सिद्धान्तका प्रतिपादन .. ६७४
- १००—श्रीरामचन्द्रजीके प्रश्नके अनुसार उत्तम बोधकी प्राप्तिमें शास्त्र आदि कैसे कारण बनते हैं, यह बतानेके लिये श्रीवसिष्ठजीका उन्हें कीरको-पाख्यान सुनाना—लकड़ीके लिये किये गये उद्योगसे कीरकोंका सुखी होना ... ६७६
- १०१—कीरकोपाख्यानके स्पष्टीकरणपूर्वक आत्मज्ञानकी प्राप्तिमें शास्त्र एव गुरुपदेश आदिको कारण बताना .. ६७७
- १०२—श्रीवसिष्ठजीके द्वारा समता एवं समदर्शिताकी भूरि-भूरि प्रशंसा ... ६७८
- १०३—कर्मोंके त्याग और ग्रहणसे कोई प्रयोजन न रखते हुए भी जीवन्मुक्त पुरुषोंकी स्वभावतः सत्कर्मोंमें ही प्रवृत्तिका प्रतिपादन ... ६८०
- १०४—निर्दो और मभासदोंद्वारा श्रीवसिष्ठजीको साधु-वाद, देव-दुन्दुभियोंका नाद, दिव्य पुष्पोंकी वर्षा, गुरु-पूजन-महोत्सव, श्रीदशरथजी और श्रीरामजीके द्वारा गुरुदेवका सत्कार, सम्पों और निद्राद्वारा पुनः श्रीवसिष्ठजीकी स्तुति ... ६८२
- १०५—गुरुके पृछनेपर श्रीरामचन्द्रजीका पुनः अपनी परमानन्दमयी स्थितिको बताना तथा वसिष्ठजी-का उन्हें कृतकृत्य बताकर विश्वामित्रजीकी आज्ञा एव भूमण्डलके पालनके लिये कहना, श्रीरामद्वारा अपनी कृतार्थताका प्रकाशन .. ६८५
- १०६—मध्याह्नकालमें राजासे सम्मानित हो मन्त्र आवाग्यक कृत्यके लिये उठ जाना और दूम्बरे दिन प्रातःकाल सबके सभामें आनेपर श्रीरामका गुरुके समक्ष अपनी कृतकृत्यता प्रगट करना ... ६८६
- १०७—श्रीवसिष्ठ और श्रीरामका सवाद, दृश्यका परि-मार्जन, सबकी चिदाकाशरूपताका प्रतिपादन, श्रीरामका प्रश्न और उसके उत्तरमें श्रीवसिष्ठ-द्वारा प्रशस्तिके उपाख्यानका आरम्भ ... ६८८
- १०८—यह जगत् ब्रह्मका सत्कल्प होनेसे ब्रह्म ही है, इसका विवेचन ... ६८९
- १०९—राजा प्रशस्तिके प्रश्नोंपर श्रीवसिष्ठजीका विचार एव निर्णय ... ६९१
- ११०—सिद्ध आदिके लोनोंकी सकल्यन्ता बताने हुए इस जगत्को भी वैसा ही बनना और ब्रह्ममें अहभावका स्फुरण ही हिरन्यगर्भ है, उसका सत्कल्प होनेके कारण त्रिलोकी भी ब्रह्म ही है, इसका प्रतिपादन ... ६९२
- १११—समासदोंका कृतार्थता-प्रकाशन तथा वसिष्ठजी-की आज्ञासे महाराज दशरथका ब्रह्मगोत्रे भोजन कराना और सात दिनोंतक दान-दानसे सम्पन्न उत्सव मनाना ... ६९४
- ११२—श्रीवाल्मीकि-भरद्वाज-संवादका उपसंहार इन ग्रन्थकी महिमा तथा श्रोताके लिये दान नाना आदिका उपदेश ... ६९६

११३-अरिष्टनेमि, सुरचि, कारुण्य तथा सुतीक्ष्ण-
की कृतकृत्यताका प्रकाशन, गिष्योका
गुरुजनोंके प्रति आत्मनिवेदन तथा ब्रह्मको एवं
ब्रह्मभूत वसिष्ठजीको। नमस्कार ... ६९७

१३-क्षमा-प्रार्थना और नम्र निवेदन
(हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल
गोस्वामी) ... ६९

१४-जीवन्मुक्तका स्वरूप और आचार (कविता) ... ७०

चित्र-सूची

बहुरंगे

- १-श्रीरामके प्रति वसिष्ठका उपदेश ... मुखपृष्ठ
२-श्रीराम तीर्थयात्राके लिये पिता दशरथसे आज्ञा
मोंग रहे हैं (प्रसंग वैराग्य-प्रकरण सर्ग ३) ... १
३-दशरथकी सभामें दिव्य महर्षियोंका अवतरण
(प्रसंग वैराग्य-प्रकरण सर्ग ३३) ... १७
४-महाराजा जनक और मुनि शुक्रदेव (प्रसंग
मुमुक्षु-प्रकरण सर्ग १) ... ६५
५-लीलापर देवी सरस्वतीकी कृपा (प्रसंग उत्पत्ति-
प्रकरण सर्ग १५) ... ९६
६-ब्रह्माजी और बालक वसिष्ठमें बातचीत (प्रसंग
मुमुक्षु-प्रकरण सर्ग १०) ... १४४
७-मनु और इक्ष्वाकुमें बातचीत (प्रसंग स्थिति-
प्रकरण सर्ग ११७) ... २१८
८-भगवान् नृसिंहके द्वारा हिरण्यकशिपुका वध
(प्रसंग उपशम-प्रकरण सर्ग ३०) ... २४९
९-ब्रह्माका राजहस्योपर दस ब्रह्माओंको देखना
(प्रसंग उत्पत्ति-प्रकरण सर्ग ८५) ... ३०४
१०-भगवान् गौरीशङ्करकी सेवामें वसिष्ठजी (प्रसंग
निर्वाण-प्रकरण पूर्वार्ध सर्ग २९) ... ३६२
११-प्रह्लादके द्वारा भगवान् विष्णुकी पूजा (प्रसंग
उपशम-प्रकरण सर्ग ३२) ... ३८४
१२-भगवान् विष्णुने प्रह्लादको समाधिसे जगानेके
लिये शङ्ख बजाया (प्रसंग उपशम-प्रकरण सर्ग ३९) ४४८
१३-आकाशसे पुष्प-वृष्टि और सभासदोंद्वारा वसिष्ठजी-
को पुष्पाञ्जलि (निर्वाण-प्रकरण उ० सर्ग २१४) ५१६
१४-काकभुशुण्डि और वसिष्ठ (प्रसंग निर्वाण-प्रकरण
पूर्वार्ध सर्ग १६) ... ५८०
१५-भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा अर्जुनको उपदेश
(प्रसंग निर्वाण-प्रकरण पूर्वार्ध सर्ग ५२ से ६०) ६३६
१६-शिखिध्वजको कुम्भ गडहमें गिरनेसे रोक रहे हैं

दोरंगा

- १-चार द्वारपाल ... मुखपृष्ठ
सादे
१-तीर्थयात्रासे लौटनेपर श्रीरामचन्द्रजीका स्वागत
(प्रसंग वैराग्य-प्रकरण सर्ग ४) ... ४
२-सुरचि और देवदूत (प्रसंग वैराग्य-प्रकरण
सर्ग १) ... ११
३-राजा सिन्धुका राज्याभिषेक (प्रसंग उत्पत्ति-प्रकरण
सर्ग ५१) ... १७
४-दोनों लीलाओंके साथ राजा पद्मका राज्याभिषेक
(प्रसंग उत्पत्ति-प्रकरण सर्ग ५९) ... २८
५-जनकका तमालकी झाड़ीमें छिपे सिद्धोंके गीत-
श्रवण (प्रसंग उपशम-प्रकरण सर्ग ८) ... ३३
६-क्षीरसागरमें शेषशय्यापर विराजित भगवान्का
जगतकी स्थितिको देखना (प्रसंग उपशम-
प्रकरण सर्ग ३८) ... ४१
७-भगवान्के द्वारा प्रह्लादका अभिषेक (प्रसंग
उपशम-प्रकरण सर्ग ४१) ... ४८
८-शेषनागपर भगवान् विष्णु, स्वर्गमें इन्द्र और
पातालमें प्रह्लाद (प्रसंग उपशम-प्रकरण सर्ग ४२) ५४
९-राजा बलि और शुक्राचार्य (प्रसंग उपशम-
प्रकरण सर्ग ४५-४६) ... ६१
१०-गन्धर्वों और विद्याधरियोंके द्वारा भोगोंका
प्रलोभन देनेपर भी उद्दालकका उनकी ओर
ध्यान न देना (प्रसंग उपशम-प्रकरण सर्ग ५४) ६८

रेखा-चित्र

- १-वसिष्ठजीके द्वारा ज्ञानोपदेश ... १
२-अगस्तिद्वारा सुतीक्ष्ण ब्राह्मणसे मोक्षके
कारणका प्रतिपादन ... १७
३-अग्निवेश्यका अपने उदास पुत्र कारुण्यको
समझाना ... १८
४-बाल्मीकिके आश्रमपर देवदूतके साथ राजा
अरिष्टनेमिका जाना और उसके समयका

- ५-मेरुपर्वतपर भरद्वाजकी लोक-पितामह ब्रह्मासे
वर-याचना ... २१
- ६-राजा दशरथसे श्रीरामद्वारा तीर्थयात्राके
लिये आज्ञा माँगना ... २४
- ७-तीर्थयात्रासे लौटे हुए श्रीरामका राजसभामें
आना ... २५
- ८-श्रीरामकी खिन्नताके सम्बन्धमें राजा
दशरथका श्रीवसिष्ठसे प्रश्न ... २६
- ९-मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रका राजा दशरथद्वारा
छयोदीपर स्वागत ... २७
- १०-विश्वामित्रका रोष ... ३०
- ११-विश्वामित्रको वसिष्ठका समझाना ... ३१
- १२-श्रीरामके सेवकका राजसभामें आना ... ३२
- १३-श्रीरामका पिता दशरथके चरणमें प्रणाम
करना ... ३४
- १४-श्रीरामका अपने भाइयोंसहित पृथ्वीपर
आसन ग्रहण करना ... ३४
- १५-शरीरकी बाल्य, युवा और वृद्धावस्था ... ५६
- १६-विश्वामित्रका श्रीरामको तत्त्वज्ञान-सम्पन्न
बताते हुए उनके सामने शुकदेवजीका
वृत्तान्त उपस्थित करना ... ६५
- १७-मेरुगिरिपर एकान्तमें बैठे शुकदेवको
आत्मज्ञानी व्यासद्वारा उपदेश ... ६६
- १८-राजा जनकके अन्तःपुरमें शुकदेवका युवतियों-
के द्वारा सत्कार ... ६६
- १९-विश्वामित्रजीका वसिष्ठजीसे श्रीरामको
उपदेश देनेका अनुरोध ... ६८
- २०-अपने पिता ब्रह्माजीसे उत्पन्न होते ही
वसिष्ठजीका अभिशप्त होना ... ७८
- २१-ब्रह्माजीकी सनकादिकों और नारदको
भारतवर्षमें जाकर वहाँके निवासियोंका
उद्धार करनेकी प्रेरणा ... ७९
- २२-वसिष्ठजीके द्वारा राजा पद्म और उनकी
पत्नी लीलाका उपाख्यान-कथन ... ११५
- २३-रानी लीलाद्वारा विद्वान्, ज्ञानी और
तपस्वी ब्राह्मणोंकी पूजाके पश्चात् उनसे
अमरत्व-प्राप्तिका साधन पूछा जाना ... ११६
- २४-लीलाद्वारा सरस्वती देवीकी आराधना ... ११७
- २५-अन्तःपुरमें मृतपतिके शवके सम्मुख वियोग-
विह्वल रानी लीला ... ११८
- २६-सरस्वतीका आकाशवाणीके रूपमें पतिके शवको
फूलसे ढकनेका लीलाको आदेश देना ... ११८
- २७-आधी रातके समय लीलाके आवाहनपर
सरस्वतीका प्रकट होकर उसे दर्शन देना ... ११९
- २८-निर्विकल्प समाधिद्वारा रानी लीलाका राजप्रासाद-
के आकाशमें मिहामनासीन राजा पद्मका
देखा जाना ... ११९
- २९-आकाशस्वरूपा लीलाद्वारा समाधि-अवस्थामें
आकाशरूपिणी राजसभामें पतिके वासनामय
स्वरूप और राजवैभवका दर्शन ... १२०
- ३०-लीलाका सरस्वतीसे कृत्रिम और अकृत्रिम
सृष्टिके विषयमें पूछना और सरस्वतीद्वारा एक
ब्राह्मण-दम्पतिके जीवन-वृत्तान्तका निरूपण ... १२१
- ३१-वसिष्ठनाम-धारी ब्राह्मणका पर्वतशिखरपर बैठकर
एक राजाको सपरिवार शिकार खेलनेकी इच्छामें
जाते देखकर विचारमग्न होना ... १२३
- ३२-वसिष्ठ नामधारी ब्राह्मणकी पत्नी अरुन्धती-
की सरस्वती-आराधना और पतिके अमरत्व-
सम्बन्धी वरकी प्राप्ति ... १२३
- ३३-वसिष्ठनामधारी ब्राह्मणकी त्रिलोकविजयी नरेश-
पदकी प्राप्ति ... १२४
- ३४-रानी लीला और सरस्वतीका संवाद ... १२४
- ३५-सत्यकाम और सत्यसक्तसे युक्त लीला और
सरस्वती देवीका ज्येष्ठगर्भा आदिको साधारण
स्त्रीके रूपमें दर्शन ... १२२
- ३६-लीला और सरस्वतीका आकाशमें भ्रमण ... १२३
- ३७-लीलाका सरस्वतीसे अपने पूर्वजन्मके वृत्तान्तका
निरूपण ... १२४
- ३८-लीलाका गृहमण्डपमें प्रवेश कर सरस्वतीके साथ
आकाशमें उड़ जाना ... १२५
- ३९-जम्बूद्वीपमें भरतवर्षमें अपने पतिके राज्यमें
लीलाका सरस्वतीके साथ अक्रमगकारी राजद्वारा
उपस्थित किया गया संग्राम-दृश्य देखना ... १३८
- ४०-लीला और सरस्वतीका आकाशमें विमानर-
स्थित होकर युद्धका अवलोकन करना ... १३९
- ४१-युद्धका वंद होना ... १४४

- ४२-राजा विदूरथके शयनागारमें गवाक्षरन्ध्रसे लीला और सरस्वतीका प्रवेश ... १४४
- ४३-राजा पद्मके भवनमें सरस्वती और लीलाका प्रवेश और राजाद्वारा उनका पूजन ... १४६
- ४४-राजा पद्मका सरस्वतीसे अपने जीवनके अनेक वृत्तान्तोंके स्मरणका कारण पूछना ... १४७
- ४५-राजा विदूरथद्वारा युद्धकी प्रलयाग्निमें भग्न नगरमें ग्रस्त प्राणियोंका कर्णक्रन्दन श्रवण ... १५१
- ४६-लीला और सरस्वतीसे आदेश लेकर राजा विदूरथका युद्धके लिये प्रस्थान ... १५१
- ४७-द्वितीय लीलाकी सरस्वती देवीसे वर-याचना ... १५३
- ४८-युद्धस्थलमें पराजित राजा विदूरथके गलेपर राजा सिन्धुका अस्त्रप्रहार और विदूरथका रथसहित राजप्रासादमें प्रवेश ... १५८
- ४९-लीलाका अपने वासनामय शरीरसे पति पद्मसे मिलनेके लिये आकाशमार्गसे ऊपर जाना और मार्गमें सरस्वतीद्वारा प्रेषित अपनी कन्यासे मिलना ... १६१
- ५०-लीलाका अपने मृतपति पद्मका मुख देखना और अपनी प्रतिभाके प्रभावसे इस सत्यको समझना कि सग्राममें राजा सिन्धुद्वारा मारे गये थे मेरे पति ही हैं ... १६२
- ५१-संकल्परूपिणी देवियों लीला और सरस्वतीका जीवात्माके साथ राजा पद्मके नगरमें प्रवेश ... १६८
- ५२-लीला और सरस्वतीद्वारा श्वमण्डपमें राजा विदूरथकी श्वशय्याके पार्श्वभागमें स्थित लीलाका देखा जाना जो पहले मृत्युको प्राप्त हो चुकी थी और पहले ही वहाँ आ गयी थी १६९
- ५३-राजा पद्मकी सरस्वतीसे अभीष्ट वरकी प्राप्ति ... १७३
- ५४-वाल्मीकि और भरद्वाज ... २४९
- ५५-राजा दशरथका मुनिसमुदायका सत्कारकर उनसे विदा लेना ... २५०
- ५६-वसिष्ठजीद्वारा पञ्चमहायज्ञ-अनुष्ठानका सम्पादन २५०
- ५७-श्रीराम, राजा दशरथ तथा वसिष्ठ आदिके द्वारा ब्राह्मणोंको गौ, भूमि, तिल, सुवर्ण, शय्या, आसन, वस्त्र और वर्तन आदिका दान ... २५१
- ५८-श्रीरामद्वारा विष्णु, शंकर, अग्नि और सूर्य

- आदि देवताओंका पूजन ... २५१
- ५९-वसिष्ठजीको उनके निवासस्थानपर अपना कन्वा झुकाकर श्रीरामका प्रणाम करना ... २५१
- ६०-विश्वामित्र तथा अन्य मुनियोंके साथ रथपर आरुढ़ होकर वसिष्ठजीका राजा दशरथकी सभामें प्रवेश ... २५२
- ६१-राजा जनकका अपने ऊँचे महलपर चढ़वार एकान्तमें स्थित होकर ससारकी नश्वरता और आत्माके विवेक-विज्ञानको सूचित करनेवाले अनेक आन्तरिक उद्गार और निश्चय प्रकट करना ... २५७
- ६२-राजा जनकद्वारा ससारकी विचित्र स्थितिपर विचार ... २६०
- ६३-राजा जनककी जीवनमुक्तरूपसे स्थिति ... २६१
- ६४-दीर्घतपा मुनिका अपनी स्त्री तथा दोनों पुत्र पुण्य और पावनके साथ अपने गङ्गातटीय आश्रममें निवास ... २६९
- ६५-दीर्घतपाका शरीर-त्याग ... २६९
- ६६-माता-पिताका और्ध्वदेहिक कर्म समाप्तकर पुण्यका अपने श्रोत्राकुल बन्धु पावनके पास आगमन ... २७०
- ६७-पुण्यके समझानेपर पावनको उत्कृष्ट बोधकी प्राप्ति और दोनोंका वन-प्रदेशमें विचरण ... २७१
- ६८-दैत्यराज बलि ... २७३
- ६९-राजा बलिके अन्तःकरणमें वैराग्य एवं विचारका उदय ... २७३
- ७०-विरोचनका बलिको भोगोंसे वैराग्य तथा विचारपूर्वक परमात्मसाक्षात्कारके लिये उपदेश २७४
- ७१-शुक्राचार्यका ग्रहसमुदायसे भरे आकाश-मार्गसे देवलोकके लिये प्रस्थान ... २७८
- ७२-दैत्यराज बलिका समाधिस्थ होना ... २७९
- ७३-समाधिमें मग्न दैत्यराज बलिके दर्शनके लिये असुरों आदिका आगमन ... २७९
- ७४-शुक्राचार्यद्वारा बलिके समाधि-अवस्थासे न उठनेतककी अवधिमें कार्य करनेका दानवोंको आदेश ... २८०
- ७५-मनुष्य, नागराज, ग्रह, देववृन्द, पर्वत और दिक्पाल तथा वन-जीवोंका यथास्थान गमन २८०

७६—समाधिसे जगनेपर दैत्यराज बलिका अश्वमेध- अनुष्ठान	२८१
७७—श्रीहरिद्वारा पैरोसे त्रिलोकको नापना और बलिको वैभव-भोगसे वञ्चित करना	२८२
७८—प्रह्लादद्वारा भगवान् विष्णुकी मानसिक एव बाह्यपूजा	२८५
७९—इन्द्र आदि देवता और मरुद्गणोंका क्षीर- सागरमें शेषनागकी शय्यापर विराजमान भगवान् श्रीहरिके पास गमन	२८६
८०—प्रह्लादद्वारा पूजाग्रहमें प्रत्यक्ष विराजमान भगवान् श्रीहरिका स्तवन	२८७
८१—प्रह्लादका आत्मचिन्तन	२८९
८२—पातालमें आत्मचिन्तनलीन प्रह्लादको समाधिसे जगानेका प्रयत्न	२९३
८३—उद्दालक मुनिका परमार्थ-चिन्तन	३०१
८४—उद्दालक मुनिका गन्धमादन पर्वतकी रमणीय गुहामें प्रविष्ट होकर निर्विकल्प समाधिमें स्थित होनेका प्रयत्न	३०२
८५—महर्षि माण्डव्यका किरातराज सुरघुके महलमें पधारना	३११
८६—सुरघुद्वारा परमपदकी प्राप्ति	३१४
८७—किरातराज सुरघु और राजर्षि पर्णादका सवाद	३१५
८८—पिताओंकी और्ध्वदेहिक क्रियाकी समाप्तिके पश्चात् भास और विलासका विलाप	३२१
८९—वृद्धावस्थाको प्राप्त भास और विलासकी परस्पर भेंट	३२२
९०—वीतहव्य मुनिका एकाग्रताकी सिद्धिके लिये इन्द्रिय और मनको बोधित करना	३४५
९१—वीतहव्य महामुनिकी समाधि	३४८
९२—महामुनि वीतहव्यकी उक्कारकी अन्तिम मात्राका अवलम्बनकर परमात्मप्राप्तिरूप मुक्ता- वस्थाका निरूपण	३५१
९३—देवराजकी सभामें मुनिवर गातातपद्वारा वायसराज भुशुण्डकी कथाका वृत्तान्त-वर्णन	३७६
९४—वसिष्ठजीका भुशुण्डके निवास-स्थान मेरुगिरिपर जाना	३७७
९५—वसिष्ठजी और भुशुण्डका सवाद—कुल आयु आदिके सम्बन्धमें	३७८

९६—वसिष्ठजीके सम्मुख भुशुण्डद्वारा महादेवजीके रूप और मातृकाओंका वर्णन	३७९
९७—मातृकाओंके महोत्सवमें ब्राह्मी देवीके रथमें जुतनेवाली हसियों और अम्बुमादेवीके वहन चण्ड नामक कौएका नृत्य	३८०
९८—समाधिसे विरत होनेपर ब्राह्मीदेवीकी अपनी माता हसियोंके साथ भुशुण्ड आदिद्वारा आराधना	३८०
९९—वसिष्ठजीसे भुशुण्डका मेरुपर्वतपर कल्पवृक्षकी शाखामें स्थित अपने त्र्यंशलेका वर्णन करना	३८१
१००—भुशुण्डद्वारा वसिष्ठका पूजन और आकाश- मार्गसे गमन	३९१
१०१—कैलास पर्वतपर गङ्गातटस्थ आश्रममें तप करते हुए वसिष्ठजीको पार्वतीजीसहित भगवान् महादेवजीका दर्शन	३९६
१०२—वसिष्ठजीद्वारा भगवान् नीलकण्ठ शंकरको पुष्पाञ्जलि-समर्पण	४०९
१०३—वेताल और राजाका सवाद	४३१
१०४—अपने गुरु वितलके साथ राजा भगीरथकी वातचीत	४३४
१०५—राजा भगीरथका सर्वस्व-त्याग	४३५
१०६—राजा भगीरथका अपने ही नगरमें भिजाटन	४३६
१०७—राजा भगीरथका अन्य देशमें विद्यमान उत्तम नगरमें राज्याभिषेक	४३६
१०८—भूतलपर गद्गाजीको लानेके लिये राजा भगीरथकी तपस्या	४३७
१०९—राजा गिलिष्वज और चूडालाका विवाद	४३८
११०—राजा गिलिष्वजद्वारा चूडालाके नयनोन्मूलन- की प्रयास	४४१
१११—चूडालाकी विजय	४४२
११२—चूडालाका एतन्तमें योग-भजन	४४३
११३—चूडालाकी योगसिद्धि	४४८
११४—विन्ध्याचलके जंगली प्रदेशमें एक कौडीकी तीन दिनोंतक खोज करनेवाले किराटकी चिन्तन-मगिरी प्राप्ति	४४९
११५—राजा गिलिष्वजकी बटती वैराग्य-वृत्ति	४५०
११६—राजा गिलिष्वजका चूडालाके अपने वैराग्य-फल	४५१

११७—राजा शिखिध्वजका गृह-त्याग...	... ४५२	विधिवत् पूजा	... ४८४
११८—चूडालाका आकाश-मार्गसे उड़कर अपने पतिका अन्वेषण	... ४५४	१२७—चूडालाका मदनिका वेषमेंसे ही अपने असली रूपमें प्राकट्य और राजा शिखिध्वजका आश्चर्यचकित होना	... ४८७
११९—ब्राह्मणकुमारके रूपमें चूडालाका शिखिध्वजद्वारा पूजन-सत्कार	... ४५५	१२८—अपनी पत्नी चूडालाको देखकर राजा शिखिध्वजका प्रसन्न होना	... ४८८
१२०—राजा शिखिध्वजकी देवपुत्रके वेषमें चूडालासे बातचीत	... ४५७	१२९—चूडालासहित शिखिध्वजका अपने नगरमें प्रवेश और स्वागत	... ४९१
१२१—कुम्भ (चूडाला) की बात सुनकर सर्वस्व-त्यागके लिये उद्यत शिखिध्वज	... ४६५	१३०—कचका अपने पिता बृहस्पतिसे जीवन्मुक्तिके विषयमें प्रश्न करना	... ४९३
१२२—कुम्भ (चूडाला) के अन्तर्हित हो जानेपर राजा शिखिध्वजका विचार	... ४७७	१३१—वसिष्ठजीद्वारा मूढबुद्धि आत्मज्ञानशून्य चिरञ्जीव पुरुषके स्मरणके विषयमें भुशुण्डसे प्रश्न	... ५२०
१२३—कुम्भके वेषमें चूडालाका वनस्थलीमें उतरकर निर्विकल्प समाधिमें स्थित राजा शिखिध्वजको देखना	... ४७८	१३२—विद्याधरकी भुशुण्डसे पावनपदविषयक उपदेश देनेकी प्रार्थना	... ५२०
१२४—राजा शिखिध्वजद्वारा कुम्भको पुष्पाञ्जलि-समर्पण	... ४७९	१३३—भुशुण्डके उपदेशसे विद्याधरकी समाधि	... ५२७
१२५—महेन्द्रपर्वतपर अग्निके साक्ष्यमें मदनिका (चूडाला) और शिखिध्वजका विवाह	... ४८४	१३४—मरुभूमिके मार्गमें मिले हुए महर्षि वसिष्ठ और मङ्गिका समागम तथा संवाद	... ५३३
१२६—चूडालाद्वारा शिखिध्वजकी परीक्षाके हेतु अपनी मायाके बलसे वनस्थलीमें देवगणों और अप्सराओंके साथ पधारे हुए इन्द्रको उन्हें दिखलाना और राजा शिखिध्वजद्वारा देवराजकी		१३५—सुन्दरी स्त्रीद्वारा अपनी स्तुति सुनकर वसिष्ठजीका उस रमणीकी उपेक्षा करना	... ५७५
		१३६—वसिष्ठजीके पूछनेपर विद्याधरीके द्वारा अपने जीवन-वृत्तान्तका वर्णन	... ५७९

गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित सत्साहित्यका घर-घरमें प्रचार कीजिये

सरल, सुन्दर, सचित्र धार्मिक पुस्तकें सस्ते दामोंमें खरीदकर स्वयं पढ़िये, मित्रोंको पढ़ाइये और उनका घर-घरमें प्रचार करके बालक-वृद्ध, स्त्रीपुरुष, विद्वान्-अविद्वान् सबको लाभ पहुँचाइये।

यहाँ आर्डर भेजनेके पहले अपने शहरके पुस्तकविक्रेतासे माँगिये।

इससे आप भारी डाकखर्चसे बच सकेंगे। भारतवर्षमें लगभग डेढ़ हजार पुस्तक-विक्रेताओंके यहाँ गीताप्रेसकी पुस्तकें मिलती हैं। निम्नलिखित स्थानोंपर गीताप्रेसकी निजी दूकानें हैं, जहाँ कल्याण और कल्याण-कल्पतरुके ग्राहक भी बनाये जाते हैं।

गीताप्रेसकी निजी दूकानोंके पते—

कलकत्ता—श्रीगोविन्दभवन-कार्यालय पता—न० ३०, बाँसतला गली।

दिल्ली—गीताप्रेस, गोरखपुरकी पुस्तक-दूकान, पता—२६०९, नयी सड़क।

पटना—गीताप्रेस, गोरखपुरकी पुस्तक-दूकान; पता—अशोक-राजपथ, बड़े अस्पतालके सदर फाटकके सामने।

कानपुर—गीताप्रेस, गोरखपुरकी पुस्तक-दूकान; पता—नं० २४/५५, बिरहानारोड, फूलबागके सामने।

बनारस—गीताप्रेस, कागज-एजेंसी; पता—५९। ९, नीचीबाग।

हरिद्वार—गीताप्रेस, गोरखपुरकी पुस्तक-दूकान; पता—सब्जीमंडी, मोतीबाजार।

ऋषिकेश—गीताभवन, पता—गङ्गापार, स्वर्गाश्रम।

सूचीपत्र मुफ्त मँगवाइये।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



यतः सर्वाणि भूतानि प्रतिभान्ति स्थितानि च । यत्रैवोपशमं गच्छन्ति तस्मै सत्यात्मने नमः ॥
यत्सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति च स्फुटम् । श्रुत्वा ह्युदीर्यते साम्नि तस्मै ब्रह्मात्मने नमः ॥

वर्ष ३५ }

गोरखपुर, सौर माघ २०१७, जनवरी १९६१

{ संख्या १
पूर्ण संख्या ४१०

सहर्षि वसिष्ठजीको नमस्कार

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं
द्वन्द्वतीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् ।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं
भावातीतं त्रिगुणरहितं श्रीवसिष्ठं नताः स्म ॥
—सुतीक्ष्ण (नि० प्र० उ० २१६।२६)

भगवान् श्रीरामको नमस्कार

आद्यन्तवर्जितविरालशिलान्तराल-
सम्पीडचिद्घनवपुर्गङ्गनामलम्बम् ।
स्वस्यो भवाऽऽनन्दरपहवकोजलेन-
लीलास्थिताखिलजगज्जय ते नमस्ते ॥
—वसिष्ठ (नि० प्र० पृ० २।६०)

योगवासिष्ठमें भगवान् श्रीरामके स्वरूप तथा माहात्म्यका प्रतिपादन

महर्षि वसिष्ठकी प्रेरणासे दशरथके दरबारमें समस्त ऋषि-मुनियो-महानुभावोंको सम्बोधन करके महर्षि विश्वामित्र भगवान् श्रीरामके स्वरूपका प्रतिपादन करते हुए कहते हैं—

अत्रैव कुरु विश्वासमयं स पुरुषः परः ।
विश्वार्थमथितात्मभोधिर्गम्भीरागमगोचरः ॥
परिपूर्णपरानन्दः समः श्रीवत्सलान्छनः ।
सर्वेषां प्राणिनां रामः प्रदाता सुप्रसादितः ॥
अयं निहन्ति कुपितः सृजत्ययमस्तत्कान् ।
विश्वादिर्विश्वजनको धाता भर्ता महासखः ॥

(नि० प्र० पूर्वार्ध १२८ । ८१-८३)

सज्जनों ! आप सब लोग यह विश्वास कीजिये कि ये श्रीरामचन्द्रजी ही परम पुरुष परमात्मा हैं । इन्होंने ही विश्वहितके लिये विष्णुरूपसे क्षीरसागरका मन्थन किया था । गम्भीर रहस्यसे भरे उपनिषदादि शास्त्रोंके तत्त्वगोचर साक्षात् परब्रह्म ये ही हैं । परिपूर्ण परमानन्द, सम-स्वरूप, श्रीवत्सके चिह्नसे सुगोभित भगवान् श्रीरामचन्द्र जब भलीभाँति प्रसन्न हो जाते हैं, तब अपनी कृपासे सम्पूर्ण प्राणियोंको मोक्ष प्रदान कर देते हैं । यही भगवान् श्रीरामचन्द्रजी कुपित होकर रुद्र-रूपसे जगत्का सहार करते हैं, यही ब्रह्मारूपसे इस विनाशी जगत्का सृजन करते हैं । यही विश्वके आदि, विश्वके उत्पादक, विश्वके धाता, पालनकर्ता और महान् सखा भी हैं ।

अयं त्रयीमयो देवस्त्रैगुण्यगहनातिगः ।
जयत्यङ्गैरयं षड्भिवेदात्मा पुरुषोऽद्भुतः ॥
अयं चतुर्बाहुयं विश्वस्रष्टा चतुर्मुखः ।
अयमेव महादेवः संहर्ता च त्रिलोचनः ॥
अजोऽयं जायते योगाज्जागरूकः सदा महान् ।
विभर्ति भगवानेतद्भिरूपो विश्वरूपवान् ॥

(नि० प्र० पूर्वार्ध १२८ । ८६-८८)

यही भगवान् श्रीराम ऋक्-यजु-सामवेदमय हैं, तीनों गुणोंसे अतीत अतिगहन यही हैं और छः अङ्गोंसे युक्त वेदात्मा अद्भुत पुरुष भी यही हैं । विश्वका पालन करनेवाले चतुर्भुज विष्णु यही हैं, विश्वके स्रष्टा चतुर्मुख ब्रह्मा यही हैं और समस्त विश्वका सहार करनेवाले त्रिलोचन भगवान् महादेव भी यही हैं । ये अजन्मा रहते हुए ही अपनी योग-माया—लीलासे अवतार लेते हैं, ये सर्वदा सबसे महान् हैं, ये सदा जागते रहते हैं, त्रिगुणात्मकरूपसे रहित हुए भी ये

विश्वरूपवान् हैं । यही भगवान् इस विश्वको अपने संकल्पसे धारण करते हैं ।

अयं दशरथो धन्यः सुतो यस्य परः पुमान् ।
धन्यः स दशकण्डोऽपि चिन्त्यश्चित्तैन योऽमुना ॥
राम इत्यवतीर्णोऽयमर्णवान्तःशयः पुमान् ।
चिदानन्दधनो रामः परमात्मायमव्ययः ॥
निगृहीतेन्द्रियग्रामा रामं जानन्ति योगिनः ।
वयं त्ववरमेवास्य रूपं रूपयितुं क्षमाः ॥

(निर्वाण-प्रकरण पूर्वार्ध १२८ । ९०, ९२, ९३)

ये महाराज दशरथ धन्य हैं, जिनके पुत्र परमपुरुष परमात्मा स्वयं हुए । यह दशकण्ठ रावण भी धन्य है, जिसका ये भगवान् अपने चित्तसे चिन्तन करेंगे । क्षीरसागरमें गथन करनेवाले श्रीविष्णु भगवान् ही श्रीरामचन्द्रके रूपमें अवतीर्ण हैं । ये श्रीराम साक्षात् सच्चिदानन्दधन अविनाशी परमात्मा हैं । मन-इन्द्रियोपर विजय प्राप्त किये हुए योगीजन ही इन श्रीरामजीको यथार्थरूपमें जानते हैं । हमलोग तो इनके बाहरी स्वरूपके निरूपणकी ही क्षमता रखते हैं ।

इसके पहले महर्षि विश्वामित्रजीने भगवान् श्रीरामकी भावी लीलाओंका वर्णन करते हुए समस्त ऋषि-मुनि, सिद्ध-देवताओंसे यहाँतक कह दिया था—

यैर्दृष्टो यैः स्मृतो वापि यैः श्रुतो बोधितस्तु यैः ।
सर्वावस्थागतानां तु जीवन्मुक्तिं प्रदास्यति ॥
× × ×
अनेन रामचन्द्रेण पुरुषेण माहात्मना ।
नमोऽस्मै जितमेवैते कोऽप्येवं चिरमेधताम् ॥

(निर्वाण प्रकरण पूर्वार्ध १२८ । ७४-७६)

जो लोग भगवान् श्रीरामका दर्शन करेंगे, उनके लीला-चरित्रका स्मरण या श्रवण करेंगे और जो लोग इनके स्वरूप तथा लीलाचरित्रोंका परस्पर बोध करायेगे, उन सम्पूर्ण अवस्थाओंमें स्थित पुरुषोंको भगवान् श्रीराम जीवन्मुक्ति प्रदान करेंगे ।

× × ×
सज्जनों ! आप सब लोग इन भगवान् श्रीरामचन्द्रजीको नमस्कार कीजिये । इनके नमस्कारसे ही आपलोग अनायास ही समस्त अज्ञानजनित जगत्पर विजय प्राप्त करेंगे । किसी भी दूसरे साधनकी आवश्यकता नहीं होगी । आपलोग चिर-कालतक प्रगति करें !

कल्याण

याद रखो—मैं, तुम, यह, वह, सृष्टि, सहार आदि रूपसे जो दृश्यप्रपञ्च दिखायी दे रहा है, वह एकमात्र अद्वितीय नित्य निर्मल ज्ञान्त चिन्मय ब्रह्मकी ही अभिव्यक्ति है। इन समस्त सत्-रूपसे दीखनेवाले असत् पदार्थोंमें एकमात्र सत् परमात्मा ही प्रकट है। वह सच्चिदानन्दघन ब्रह्म ही यह सम्पूर्ण जगत् है। उसके अतिरिक्त जगत् नामकी कोई सत् वस्तु कभी न थी, न है।

याद रखो—आकाशकी शून्यता आकाश ही है, जलकी द्रवता जल ही है, प्रकाशकी आभा प्रकाश ही है, वायुका स्पन्दन वायु ही है, समुद्रकी तरङ्गें समुद्र ही हैं, वर्षाकी शीतलता वर्षा ही है, काजलकी कालिमा काजल ही है—ठीक वैसे ही जैसे ब्रह्ममें दीखनेवाला यह समस्त जगत् भी ब्रह्म ही है।

याद रखो—जैसे स्वप्नमें दीखनेवाले दृश्य, बालकको दीखनेवाला वेताल, रज्जुमें दीखनेवाला सर्प, स्वर्णमें दीखनेवाले कड़े-नाजूबंद, प्रशान्त महासागरमें उठनेवाली तरङ्गें और आवर्त, मिट्टीमें दीखनेवाले घड़े-सिकोरे और आकाशमें दीखनेवाले नगर-धर आदि सब उपाधिमात्र हैं, भ्रममात्र हैं, वैसे ही ब्रह्ममें दीखनेवाला यह सम्पूर्ण जगत् भ्रममात्र है। वस्तुतः उसकी कोई भिन्न सत्ता है ही नहीं।

याद रखो—यह समस्त जगत् वस्तुतः भ्रान्तिसे ही जगद्रूप दीखता है। यथार्थ तत्त्वका ज्ञान होनेपर यह जगद्भ्रम वैसे ही नष्ट हो जाता है जैसे रस्सीका ज्ञान होनेपर सर्पकी भ्रान्ति नष्ट हो जाती है। अथवा आकार तथा नामकी व्यावहारिक विभिन्नता प्रतीत होते हुए भी जैसे स्वर्णका ज्ञान होनेपर स्वर्ण-भूषणोंके नाम-रूपके कारण होनेवाली विभिन्नता तथा भिन्नरूपता नष्ट हो जाती है—एकमात्र स्वर्ण ही दीखने लगता है, वैसे ही ब्रह्मका ज्ञान होनेपर विभिन्न नामरूपात्मक यह विगाल विश्व ब्रह्मरूप ही दीखने लगता है, कहीं भी कोई भिन्न सत्ता रहती ही नहीं।

वास्तवमें तो सच्चिदानन्दघन परमात्माने अनिरिक्त और कुछ है ही नहीं।

याद रखो—यह समस्त दृश्य जगत् तथा ज्ञाने होनेवाली सभी क्रियाएँ चिदानन्दघन ब्रह्मका ही सन्त्य रं। वह संकल्प भी ब्रह्म ही है। ब्रह्म जगत्का कारण नहीं है क्योंकि जगत् रूपी कार्य सर्वथा असत् ही है। नित्य सत्य ब्रह्मसे अनित्य असत् जगत्की उत्पत्ति, नित्य निरनिगम दिव्य परमानन्दघन परमात्मासे दुःखपूर्ण जगत्की उत्पत्ति, प्रकाशमय परब्रह्मसे तमोमय जगत्की उत्पत्ति सम्भव ही नहीं। अतएव ब्रह्म तथा जगत्में कारण-कार्यभाव नहीं है, ब्रह्म ही जगत् रूपमें भासित हो रहा है। उस चिदाकाशमें ही चिदाकाशने यह सब खेल हो रहे हैं। उसके अतिरिक्त अन्य कुछ है ही नहीं।

याद रखो—जब एक ब्रह्मके अतिरिक्त कोई सत्ता ही नहीं रह जाती, तब भिन्न अहंकार कहीं रहेगा और अहंकारका अभाव होते ही राग-द्वेष, ममता-मोह, मेरा-तेरा आदि मन मिथ्या विकार मिट जाते हैं जैसे स्वप्नसे जागते ही स्वप्नका सारा संसार सर्वथा मिट जाता है। फिर जगत्में रहना हुआ भी इस ज्ञानको प्राप्त जीवन्मुक्त पुरुष नित्य निरन्तर ब्रह्ममें ही स्थित रहता है। वह जगत्के आदि, मध्य, अन्त सभी अवस्थाओंमें समचित्त रहता है, क्योंकि तब उसका चित्त ही नहीं रह जाता। अतएव वह न तो प्राप्त हुई प्रिय वस्तुने-वाली वस्तुका अभिनन्दन करता है, न अप्रियने द्वेष करता है, न नष्ट हुई प्रिय वस्तुके लिये शोक करता है और न अग्रम वस्तुकी इच्छा ही करता है।

याद रखो—ऐसा परमतत्त्वको प्राप्त—दरगन्गमें अभिन्नभावसे स्थित पुरुष जगत्की क्षणभंगुर अवस्थाने अन्तः प्रशान्त ब्राह्मी स्थितिके अंदर रहना हुआ देगता है। उन्हे, लिये न कुछ पाना दोष रह जाता है, न कुछ करना गड़बड़ है। वह सर्वव्यापी परब्रह्म परमात्मस्वरूप ही बन जाता है। यही योगवासिष्ठजी शिक्षा है।

‘शिव’



एकश्लोकी योगवासिष्ठ

(लेखक—तत्त्वचिन्तक स्वामीजी श्रीमन्निरुद्धाचार्यजी वैकटाचार्यजी महाराज)

एक वार भगवान् रामने महर्षि वसिष्ठसे पूछा कि सार्थक एव सफल जीवनवाले मानवकी पहचान क्या है ? इसके उत्तरमें रघुकुलगुरु ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मर्षि वसिष्ठने जो अल्पाक्षरा किंतु अर्थशुद्ध, एकश्लोकी वाणी, जिसमें 'वीजे वृक्षमिव' सारा 'योगवासिष्ठ' भरा हुआ है, समुच्चारित की थी, वह सचमुच गागरमें सागरकी तरह योगवासिष्ठका समग्र उपादेय तत्त्व निचोड़कर एक श्लोकमें भर देती है। महर्षि-प्रवरकी अर्थभारवती वह वाणी इस प्रकार है—

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः ।

स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ॥

(योगवासिष्ठ)

महर्षि वसिष्ठका अनुभूत कथन है कि जीवनतत्त्व, (प्राणशक्ति) जिसे 'वैशेषिकदर्शन'ने 'सजाकर्म त्वसद्-विशिष्टानां लिङ्गम्' इस सूत्रद्वारा 'अध्यात्मवायु' और सांख्यने 'सामान्यकरणवृत्तिः प्राणाद्या वायवः पञ्च' कहकर 'अन्तःकरण-क्रिया' की सज्ञा दी है, मानव, पशु-पक्षी आदि सबमें साधारणतया समान है। किंतु मनुष्यको मृगादि पशु-पक्षियोंसे विभक्तकर उच्चश्रेणीमें समासीन करनेवाली मनन-शक्ति ही

है, जिसके विकसित होनेपर ही प्राणी 'मानव' कहला सकता है। महर्षि यास्कने भी निरुक्तमें 'मत्वा कर्माणि सीव्यन्ति इति मनुष्यः' कहकर वासिष्ठी उक्तिका समर्थन किया है।

वेदके मतमें जीवनका अर्थ है—प्राण। यह प्राणिमात्रमें सामान्य है। केवल इसीका विकास जबतक मानवमें है, तबतक मानव जन्तु ही है। संस्कृत भाषाने 'मानव और माणव' के भेदको व्यक्त करते हुए कहा है कि केवल प्राण-शक्तिका विकास-स्थल 'माणव' (जन्तु-विशेष) और प्राणशक्ति तथा मनन-शक्ति दोनोंका विकासकेन्द्र मानव है। मानवको द्विपादी जन्तुविशेषकी हीन कक्षासे निकालकर मानवताकी उच्चश्रेणीमें पहुँचानेवाली तो मननशक्ति ही है। वेदने भी मननशक्तिको ही 'मानवता' माना है। अतः 'योगवासिष्ठ' के मतसे मानवता-पालनपूर्वक जीवन-यापन करनेवाला ही मानव है। इसी विशिष्ट उपदेशको आत्मसात् करानेके उच्च उद्देश्यसे समग्र 'योगवासिष्ठ' प्रवृत्त हुआ है। प्रस्तुत विशिष्ट उपदेशको विश्वहितके लिये प्रसारित करनेके कारण ही ग्रन्थका नाम 'वासिष्ठ' रखा गया है। वैदिक भाषामें विशिष्टका बोधक वसिष्ठ शब्द है।

वासिष्ठ-बोध-सार

जग कहते हो जिसे जगमग ब्रह्म ही है,
जन्मका जगत्के न कारण है क्रम है।
चित्से अचित्के विकासकी आस किसे,
होता कहीं प्रकट प्रकाशसे भी तम है ?
कैसे बना, किसने बनाया, किससे है बना—
यह सब जाननेका व्यर्थ सभी श्रम है।
मिथ्या कल्पनाका एक नूतन निकेतन है,
चेतन आकाशमें अचेतनका भ्रम है ॥

—पाण्डेय रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम'

योगवासिष्ठकी श्रेष्ठता और समीचीनता

(लेखक—प० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

योगवासिष्ठके अध्येता तथा मननकर्ताओंसे यह बात छिपी नहीं है कि यह ग्रन्थ भारत ही नहीं, विश्वासहित्यमें ज्ञानात्मक, सूक्ष्मविचार-तत्त्वनिरूपक तथा श्रेष्ठ सदुक्तिपूर्ण ग्रन्थोंमें सर्वश्रेष्ठ है। यह महारामायण, वासिष्ठरामायण आदि नामोंसे भी विख्यात है। स्वयं भगवान् वसिष्ठने ही कहा है कि 'संसार-सर्पके विपसे विकल तथा विषयविषूचिकासे पीड़ित मृतप्राय प्राणियोंके लिये योगवासिष्ठ परम पवित्र अमोघ गारुड-मन्त्र है। इसे सुन लेनेपर जीवन्मुक्ति-सुखका अनुभव होता है।' * स्वामी रामतीर्थ कहा करते थे कि 'योगवासिष्ठ मेरे लिये सर्वाधिक आश्चर्य एवं चमत्कारपूर्ण ग्रन्थ है।' † डा० भगवानदासने 'मिस्टिक एक्सपिरियन्सेज' पुस्तककी प्रस्तावनामें लिखा है 'योगवासिष्ठ सिद्धावस्थाका ग्रन्थ है। इसके विचार, दर्शन, रहस्य, निरूपण-प्रणाली, भाषा, अलंकार—सब एक-से-एक आश्चर्यकर हैं।' ‡ लाला वैजनाथजीने इसके हिंदी-भाषान्तरकी भूमिकामें लिखा था कि 'वेदान्त-ग्रन्थोंमें योगवासिष्ठकी कोटिका कोई भी ग्रन्थ नहीं है' (भाग २ की भूमिका)। पिछले दिनों स्वामी भूमानन्दजी (जगद्गुरु आश्रम चटगाँव, बगाल), डा० भीखनलालजी आत्रेय, श्रीधृतीगचन्द्रजी चक्रवर्ती आदि महान् विद्वानोंने इसकी बड़ी प्रशंसा की तथा इसपर पर्याप्त मनन-अनुसंधान कर स्वतन्त्र पुस्तकें लिखी हैं।

तथापि आजके जगत्में कुछ ऐसे मतवादी भी हैं, जिनकी योगवासिष्ठके विरुद्ध स्वाभाविक उपेक्षा है। वे लोग कहते हैं कि योगवासिष्ठ १७वीं शतीकी रचना है। कई लोगोंका मत है कि यह स्वामी विद्यारण्यजीकी कृति है। कुछ भाइयों वैष्णवोंका कथन है कि इसमें श्रीरामचन्द्रको शोकविकल दिखलाया

गया है, ग्रिप्परूपमें दिखलाया गया है—इन्में भक्तिकी महिमा नहीं है अतः सर्वथा उपेक्षणीय है। जे० एन० फर्ग्यूसन का था कि 'योगवासिष्ठ ईसाकी १३ वीं तथा १४वीं शतीके बीचमें रचा गया था।' (Religious Lectures of India pp 226) प्रोफेसर शिवप्रसाद भट्टाचार्यका मत है कि यद् १० से १२ वीं शतीके मध्यकी कृति है (The Proceedings of the Madras Oriental Conference P. 545)। जर्मन विद्वान् डा० विटर्नाइने मतानुसार 'यह शंकराचार्यके अनुयायियोंकी कृति है और ७मे ८ शतीतककी रचना है।' † डा० भीखनलाल आत्रेय इमे ईसाकी ६ ठी शतीकी रचना मानते हैं। उनका कथन है कि भर्तृहरिके वाक्यदीयमें तथा योगवासिष्ठमें कुछ समान पद हैं। इनमें योगवासिष्ठ ही पुराना हो सकता है। अतः योगवासिष्ठ कालिदासके बाद और भर्तृहरिके पहलेकी रचना है, इगलिये लगभग ६ ठी शतीमें ही इसकी रचना युक्तिवगत होगा। ‡

शङ्काओंका समुचित समाधान

वस्तुतः ये सब शङ्काएँ आलस्य (योगवासिष्ठको तब अन्य ग्रन्थोंको देखनेका कष्ट न करने) प्रमाद, मननिक मतभेद तथा पाश्चात्योंके प्रभावके कारण ही हैं। ये सब कथन एक प्रकारसे अयुक्तिपूर्णमात्र भी हैं। जो लोग मते हैं कि योगवासिष्ठ १७वीं शतीकी रचना है उन्हें देखना चाहिये कि १७वीं शतीके आस-पासकी आनन्दबोधेन्द्रसरस्वतीकी वसिष्ठराम नाम तात्पर्य-प्रकाश नामकी टीका है। उसीके आगमसंगी अन्वयारण्य, आत्मसुख, आनन्दवर्णन गङ्गावरेन्द्र, मध्वर-सरस्वती तथा सदानन्द यतिकी टीकाएँ हैं। १६ वीं शतीके अन्तर्गत् श्रीमधुसूदन सरस्वतीने अपने ग्रन्थ सिद्धान्तसिन्धु, अद्वैतस-

* (क) दुस्तहा राम संसारविषावेशविषूचिकम्।

योगगारुडमन्त्रेण पावनेन प्रशान्यति ॥

(२।१२।१०)

(ख) जीवन्मुक्तत्वमस्मिन्नु श्रुते समनुभूयते।

स्वयमेव यथा पीते नारोगत्वं वरौषवे ॥

(३।८।२५)

† One of the greatest books and the most wonderful according to me ever written under the sun is 'Yoga Vasistha'

(In the Woods of God-Realization, Delhi edition, Vol III, p 293)

‡ As Shankara does not mention the work, it is probably written by one of his contemporaries. (Geschichte der Indischen Literatur - Vol. III, p. 444)

§ Hence we may place it after Kalidasa and before Bhartrihari, is somewhere in the 6th century A D (Vasistha Darshanam, the Probable Date of Composition of Yoga Vasistha, p 18)

१. ऋतुरस्तुतुरागती (१७६६) शङ्कवेकेशिन्द्राचार्यस्य सिद्धिर्नाम।

(तात्पर्यप्रकाशसंगीत)

२. यह टीका १४ वीं शतीकी होनी चाहिए क्योंकि इन्में 'रामानन्दचन्द्रिका' का उल्लेख 'निर्गणसिन्धु' इत्यादि का-चन्द्रिका है।

रक्षणः, वेदान्तकल्पलतिका, संक्षेपगारीरक-व्याख्या तथा गीताकी 'गूढार्थदीपिका' व्याख्यामें—प्रायः सर्वत्र योगवासिष्ठके हजारों वचन उद्धृत किये हैं। केवल गीताके ६।३२ तथा ३६ वें श्लोकोंकी व्याख्यामें ही इन्होंने योगवासिष्ठके पचासों श्लोकोंको उद्धृत किया है। इनसे भी पूर्व चौदहवीं शताब्दी-के सर्वोपरि विद्वान् वेदान्ताचार्य श्रीविद्यारण्य स्वामीने अपने 'जीवन्मुक्ति-विवेक' तथा 'पञ्चदशी' ग्रन्थोंमें योगवासिष्ठके श्लोकों-को बड़े आदरसे बार-बार उद्धृत किया है। इनके गुरु श्रीगकरानन्द भी 'ऋषिभिर्बहुधा गीतम्' (गीता १३।४) की व्याख्यामें लिखते हैं—'वासिष्ठविष्णुपुराणादिषु ऋषिभिर्वसिष्ठ-पराशरादिभिर्बहुप्रकारं प्रतिपादितम्'। यहाँ वसिष्ठनिर्मित

३ (क) अत एवाह वरिष्ठ — 'द्वौ क्रमौ चित्तनाशश्च योगो ज्ञानं च राघव ।' (६।२३ पर मधुसूदनी)

(ख) वासिष्ठरामायणादिषु तदेव तत्त्वज्ञान मनोनाशो वासना-क्षयश्चेति त्रयमभ्यसनीयम् । तदुक्तं वाशिष्ठे—
तच्चिन्तनं तत्कथनमन्योन्यं तत्प्रबोधनम् ।
एतदेकपरत्वं च ब्रह्माभ्यासं विदुर्बुधाः ॥
(गीता ६।३२ पर मधुसूदन)

४. परास्य शक्तिर्विधा क्रियाज्ञानफलत्मिका ।

(क) इति वेदवचः प्राह वसिष्ठश्च तथाब्रवीत् ।
सर्वशक्तिपरं ब्रह्म नित्यमापूर्णमद्वयम् ॥
यथोल्लसति ज्ञानत्यासौ प्रकाशमधिगच्छति ।
चिच्छक्तिर्ब्रह्मणो राम शरीरेषूपलभ्यते ॥
स आत्मा सर्वगो राम नित्योदितवपुर्महान् ।
यन्मनाङ् मननीं शक्तिं धत्ते तन्मन उच्यते ॥

इत्यादि (पञ्चदशी १३।१४ से २८ वें श्लोकनक सब योगवासिष्ठके ही श्लोक हैं)
'वासिष्ठश्च तथाब्रवीत्' की व्याख्यामें रामकृष्णपण्डित लिखते हैं—'वासिष्ठाभिधे ग्रन्थे ।'

(ख) वसिष्ठः—अतएव हि राम त्व श्रेयः प्राप्नोषि शाश्वतम् ।
स्वप्रयत्नोपनीतेन पौरुषेणैव नान्यथा ॥
(जीवन्मुक्तिविवेक पृष्ठ ३५)

यह श्लोक योगवासिष्ठ, मुमुक्षु-व्यवहारप्रकरणका है ।

सच्ची बात तो यह है कि 'जीवन्मुक्तिविवेक' योगवासिष्ठपर ही आधारित है । इसमें योगवासिष्ठको वाल्मीकिलिखित भी बतलाया है—“वासनामेदोवाल्मीकिना दर्शितः वासिष्ठे—‘वासना द्विविधा प्रोक्ता शुद्धा च मलिना तथा’ इत्यादि” ये सब योगवासिष्ठके ही श्लोक हैं । इसमें प्रायः आधे ग्रन्थमें योगवासिष्ठके श्लोक ही हैं ।

५ नमः श्रीशंकरानन्दगुरुपादाम्बुजम्बने । (पञ्चदशी १।१)

'योगवासिष्ठ' का सुस्पष्ट उल्लेख है । इनसे भी बहुत पहलेके १२ वीं शतीके विद्वान् श्रीश्रीधर स्वामीने अपनी सुबोधनी नामक गीता-व्याख्यामें योगवासिष्ठके श्लोकोंको कई बार उद्धृत किया है । इससे भी पूर्व गौड़ अभिनन्द नामक काश्मीरी विद्वान्ने जिसका समय ९ वीं शतीका मध्यकाल माना जाता है, 'योगवासिष्ठसार' नामका ग्रन्थ लिखा था । इसमें उसने प्रायः ६ सहस्र श्लोकोंमें ही द्वात्रिंशत्सहस्रात्मक (३२००० वाले) योगवासिष्ठ ग्रन्थके सारभूत श्लोकोंका संग्रह किया है । इससे सिद्ध है कि योगवासिष्ठ इससे भी बहुत पहलेका ग्रन्थ है ।

श्रीशंकराचार्य और योगवासिष्ठ

जो लोग कहते हैं कि शंकराचार्यके अनुयायियोंमेंसे ही किसी एकने 'योगवासिष्ठ' बना दिया, वह भी केवल उनका अविचारित निर्णय मात्र है । जिस प्रकार शंकरानन्द, नीलकण्ठ, श्रीधरस्वामी, मधुसूदन सरस्वती आदिने गीताके १३।४ श्लोकके 'ऋषिभिर्बहुधा गीतम्' की व्याख्यामें 'वासिष्ठादिभिः प्रतिपादितम्' लिखा है, उसी प्रकार शंकराचार्य भी लिखते हैं—'ऋषिभिर्वसिष्ठादिभिर्बहुधा बहुप्रकारं गीतं कथितम् । मधुसूदन सरस्वती तथा भाष्योत्कर्षदीपिकाकारने इन्हीं शब्दोंकी व्याख्या करते हुए लिखा है—'वासिष्ठाभिधे योगशास्त्रे'

इतना ही नहीं, 'श्वेताश्वतरोपनिषद्' (१।८) के भाष्यमें वे सुस्पष्ट शब्दोंमें लिखते हैं—

तथा च वासिष्ठे योगशास्त्रे प्रश्नपूर्वकं दर्शितम्—
यथाऽऽत्मा निर्गुणः शुद्धः सदानन्दोऽजरोऽमरः ॥
संस्तुतिः कस्य तात स्यान्मोक्षो वा विद्यया विभो ।

और लगातार दो श्लोकोंमें प्रश्न करके पुनः 'वासिष्ठः' लिखकर 'तत्त्वैव नित्यशुद्धस्य सदानन्दमयात्मनः' आदि योगवासिष्ठके दो श्लोकोंको उत्तररूपमें लिखते हैं । इसी प्रकार वे 'सनत्सुजातीयभाष्य' (१।१५) में भी लिखते हैं—तथा चाह भगवान् वसिष्ठः—

६ (क) तदुक्तं वसिष्ठेन—

प्राणे गते यथा देहः सुखदुःखे न विन्दति ।
तथा चेत् प्राणयुक्तोऽपि स कैवल्याश्रमे वसेत् ॥

(५।२३ गीता-व्याख्या)

(ख) वसिष्ठेन चोक्तम्—'न कर्माणि त्यजेद् योगी कर्म-भित्त्यज्यते ह्यसौ ।' (गी० १८।२ की व्याख्या)

(ग) ऋषिभिर्वसिष्ठादिभिर्योगशास्त्रेषु निरूपितम्

(गीता १३।४ की व्याख्या)

चतुर्वेदोऽपि यो विप्रः सूक्ष्मं ब्रह्म न विन्दति ।
वेदभारभराक्रान्तः स वै ब्राह्मणगर्दभः ॥
वे पुनः इसी ग्रन्थके इसी अध्यायके ३१वें श्लोकके
भाष्यमें लिखते हैं—तथा चाह भगवान् वसिष्ठः—
यत्र सन्तं न चासन्तं नाश्रुतं न बहुश्रुतम् ।
न सुवृत्तं न दुर्वृत्तं वेद कश्चित् स ब्राह्मणः ॥
यह भी नहीं कहा जा सकता कि ये ग्रन्थ शंकराचार्यकृत नहीं
हैं, क्योंकि 'शंकराचार्य' ने भी लिखा है—सन्तु-
जातीयमसत्सु दूरं ततो नृसिंहस्य च तापनीयम् ।

स्वामी भूमानन्दजीने Influence of the Yoga-
vasistha on Shankaracharya नामकी पुस्तिकामें
तुलनात्मक अध्ययनद्वारा यह भी दिखलाया है कि शंकराचार्यकी
विवेकचूडामणि, सारतत्त्वोपदेश, लघुवाक्यवृत्ति, प्रबोधानुभूति,
प्रबोधसुधाकर आदि वृत्तियोंपर योगवासिष्ठके किन-किन
श्लोकोंकी छाप या प्रभाव है । उदाहरणार्थ—'प्राणस्पन्दनि-
रोधात् सत्सङ्गाद् वासनात्यागात् । हरिचरणभक्तियोगान्मनः
स्ववेगं जहाति शनैः ॥' इस प्रबोधसुधाकर (७७) के श्लोक
पर 'अध्यात्मविद्याधिगमः साधुसंगम एव च । वासना-
सम्परित्यागः प्राणस्पन्दनिरोधनम् ॥ एतास्ता युक्तयः पुष्टाः
सन्ति चित्तजये किल ।' योगवासिष्ठ (५ । ९२ । ३५) इस
श्लोककी छाप है । इससे सिद्ध है कि योगवासिष्ठ शंकराचार्यके
समय इस समयसे कहीं अधिक निर्भ्रान्त तथा समादरणीय
ग्रन्थ था । यह स्मरणार्ह है कि शंकराचार्यका समय आजसे
२३ सौ वर्ष पूर्व है । देखिये 'कल्याण' वर्ष ११, अङ्क ८;
'सिद्धान्त' ७ । २७ ।

श्रीरामका तिरस्कार नहीं

कुछ वेष्णवजनोंको यह आपत्ति है कि श्रीरामका इसमें
शोकाकुल होना—शोकसे पीला पडना बतलाया गया है, परमात्मा
शोकयुक्त या शिष्य नहीं बनता । इसके उत्तरमें मन्त्र निवेदन
है कि श्रीरामका शोक जैसा बाल्मीकि आदि रामायणोंमें
सीताहरण या लक्ष्मणमूर्च्छा आदिके बाद है, वैसी तो
योगवासिष्ठमें कोई बात भी नहीं है । योगवासिष्ठमें राम ससारसे
खिन्न होकर खाना-पीना छोड़ रहे हैं, एकान्तवास करते हैं ।
यह भोगोंसे वैराग्य उत्तम अधिकारीका लक्षण है । भोजन
छोडनेसे उनका पीला हो जाना स्वाभाविक है । बाल्यावस्थामें
विद्याग्रहणार्थ उनके द्वारा भगवान् वसिष्ठका शिष्यत्व स्वीकार करना
सभी रामायणोंमें वर्णित है, उसी बाल्यावस्थामें विश्वामित्रके
यागसरक्षणके पूर्व ही इनका योगवासिष्ठका ग्रहण, तदुचित

अधिकारसम्पादन, सम्पूर्ण विश्वको एकदम चम्कि कर देनेवाले
प्रदत्त-भाषण योगवासिष्ठद्वारा सर्वापेक्षया रामके माहत्म्यधिकार
के प्रतिपादक तथा साधक ही हैं, बाधक नहीं ।

योगवासिष्ठमें श्रीरामका महाविष्णुत्व-निरूपण

योगवासिष्ठमें महर्षि वाल्मीकिने बार-बार श्रीरामको भूः,
विष्णु बतलाया है । कुछ थोड़े प्रसङ्ग यहाँ उदाहरणवत्
उपस्थित किये जा रहे हैं—

चिदानन्दस्वरूपे हि रामे चैतन्यविग्रहे ।

(१ । १ । ५६)

शापन्याजवशादेव राजवेशधरो हरि ।

(१ । १ । ५५)

वृन्दया शापितो विष्णुस्तेन भानुपता गत ।

(१ । १ । ६५)

अहं वेद्मि महात्मानं रामं राजीयलोचनम् ।

वसिष्ठश्च महातेजा ये चान्ये दीर्घदग्धिनाः ॥

(१ । ७ । २३)

बालक रामके ज्ञानपूर्ण भाषण सुनकर सभी मुनि अनेक-
नेक लोकोंसे दौड़ पडते हैं और आश्चर्यचम्कि हो कर अपने
लग जाते हैं—

न रामेण समोऽस्मीह दृष्टो लोकेषु क्वचन ।

विवेकवानुदारात्मा न भावी चेति नो मतिः ॥

(योग ० १ । ३३ । ४५)

अर्थात् तीनोंलोकोंमें आज तक श्रीरामके समान जानी एव
उदार व्यक्ति न तो कोई हुआ और न भविष्यमें होनेवाला ।
ऐसी हमलोगोंकी बुद्धि कहती है—हमारा निश्चय है ।

इतना ही नहीं, श्रीरामके अनृतमय प्रवचनसे सुनकर
थोड़े घास खाना छोड़ देते हैं, रानिर्गो बगलमें बैठती हुई
चित्रलिखित-सी खड़ी रह जाती हैं, देहतरंगगान एवमृत्ति
होती रहती है, सभी मन्त्री, सन्त, नगरिण, राजपुत्र
एकटक देखते रह जाते हैं । पिंडमें प्रती, मन्त्रमन्त्र
क्रीडामृग भी कान खड़े करके ध्यानमें सुनते रह जाते हैं ।
सिद्धमुनियोंकी परम्परा समाभिनयने मुद्रने डेढ़ पड़ती है—

सासन्तैः राजपुत्रैश्च ब्राह्मणैर्गणवादिभिः ।

तथा मृत्त्यैरसात्मैश्च पञ्जरैस्तैश्च पक्षिभिः ॥

क्रीडामृगैर्गतस्पन्दैस्तुभ्यैत्यन्वचदणैः ।

कौस्तल्याप्रमुखैश्चैव निजवातायनस्थितैः ॥

संशान्तभूषणारावैरस्पन्दैर्वन्तितागणैः ।

सिद्धैर्नभश्चरैश्चैव तथा गन्धर्वकिन्नरैः ।

रामस्य ता विचित्रार्था महोदारा गिरः श्रुताः ॥

(१ । ३२ । ७—११)

श्रीरामके शिष्यत्वका भी उत्तर है । योग्य अधिकारी श्रीरामसे दूसरा कौन मिलता ? अतः स्वयं प्रश्न करके वसिष्ठके हृदयमें प्रविष्ट होकर उन्होंने यह ज्ञान प्रकट किया । देखिये वासिष्ठमहारामायण-तात्पर्यटीकाका उपोद्घात, श्लोक ११—

आविश्यान्तर्वसिष्ठं बहिरपि कलयन् शिष्यभावं वितेने ।

यः संवादेन शास्त्रामृतजलधिममु रामचन्द्रं प्रपद्ये ॥

योगवासिष्ठके अन्तमें भी 'नारायण' कहकर श्रीरामको नमस्कार किया गया है ।

योगवासिष्ठमें भक्ति

योगवासिष्ठमें भक्तिकी बात भी बहुत है । यों तो उपरिनिर्दिष्ट प्रकरण भी, जिसकी छाया सम्भवतः भागवतकारके वेणुगीतपर पड़ती है और जिसमें कहा गया है कि 'श्रीकृष्णके वेणुगीतको श्रवणकर बछड़े दूध पीना भूल जाते हैं, नदियोंका वेग भग्न हो जाता है, गौएँ कबल नहीं लेती, कम भक्ति-रससे ओतप्रोत नहीं है । तथापि इस तरहके अन्य भी कई प्रसङ्ग योगवासिष्ठमें हैं । उपशम-प्रकरणके ३३वें अध्यायकी प्रह्लादकृत विष्णुस्तुति संस्कृतसाहित्यकी अद्भुत निधि है । वह सब स्तुतियोंको एक बार मात कर देती है । श्रीवसिष्ठकी भगवान् शक्रसे मिलनेके बादकी प्रार्थना भी अत्यद्भुत भक्ति-रससे परिपूर्ण है । कई स्थानोंपर भगवत्स्मरणकी बड़ी महिमा है । ध्यानकी प्रशंसा तो सर्वत्र है ही ।

भक्तशिरोमणि तुलसीदासजीको भी योगवासिष्ठ मान्य था । उनके उत्तरकाण्डके भुशुण्डिचरित्रपर भुशुण्डोपाख्यान (योग-वासिष्ठ-निर्वाणप्रकरण पूर्वार्द्ध १४ से २८ अध्याय) की छाया है । भुशुण्डके दीर्घजीवित्वका क्रम, कारणादि यहाँ बड़े विस्तारसे निरूपित है । विनयपत्रिकाके २०६ वें पदमें वे लिखते हैं—

जो मन भज्यो चहै हरि सुरतर ।

सम, संतोष, विचार, विमल अति, सतसंगति, ये चारि दृढकरि धरु

इसपर योगवासिष्ठके 'शमो विचारः संतोषश्चतुर्थः साधु-संगमः ।' (२ । ११ । ६०) 'तथा संतोषः साधुसङ्गश्च

विचारोऽथ शमस्तथा ।' (२ । १६ । १८) आदि मुमुक्षु-व्यवहार-प्रकरणके १२ से १६ वें अध्यायतकके उपदेशोका ही प्रभाव है । 'वेद पुरान बसिष्ठ बखानहिं । सुनिहिं राम जद्यपि सब जानहिं ॥' आदिसे भी इसका समर्थन-सा होता है ।

योगवासिष्ठ किसकी रचना ?

यो योगवासिष्ठको वाल्मीकिकी रचना बतलाया गया है । कई लोग इसमें 'उवाच' आदि अलंकारोंकी भरमार देखकर अन्यकी कृति समझते हैं । पर जो हो, यह तो उन्हें भी मानना पड़ेगा कि पदमाधुर्य, भावगाम्भीर्य, निरूपणशैली, तत्त्वप्रदर्शन, सूक्ष्मेक्षिका, प्रखरविचार, सर्वत्र नवीनता तथा अमृतोपम पवित्रतम साधु उपदेशोंकी शृङ्खला देखते हुए यह वाल्मीकि-रामायण या विश्वके किसी भी ग्रन्थसे निम्नकोटिका नहीं है । अतः इसका रचयिता जो भी हो, साक्षात् ईश्वर है या ईश्वरप्राप्त है । ग्रन्थ सर्वथा निर्दोष है । कई प्रकरण तो वाल्मीकिसे मिलते भी हैं । विश्वामित्र-दशरथ-संवादमें प्रायः वाल्मीकिके ही श्लोक हैं । जो अधिक हैं, वे रम्यतर हैं । 'उवाच' आदि लिखना—भिन्न शैली अपनाना भी एक लेखकद्वारा सम्भव है ही । अतः वाल्मीकिरचित मानना युक्तिसंगत ही है ।

उपसंहार

ध्यानसे देखा जाय तो भागवत वाल्मीकिरामायण तथा अन्य पुराणोंसे योगवासिष्ठका वर्णन अधिक ही मिलता है । वस्तुतः भाषा, छन्दरचना तथा विचार-प्रवणताकी दृष्टिसे योग-वासिष्ठ सर्वोत्तम ग्रन्थ प्रतीत होता है । इसलिये श्रेष्ठ साधक इसके कालनिर्णयके चक्रमें न पड़कर इससे वास्तविक लाभ उठानेके प्रयत्नमें लग जाते हैं । यही होना भी चाहिये । किन्तु साधारण व्यक्ति इससे वञ्चित न रह जायें तथा व्यापक भ्रान्त धारणा शान्त हो जाय, इसीलिये यह यत्किंचित् प्रयास किया गया है ।

वस्तुतः योगवासिष्ठ भारतीय ज्ञानरविकी एक अनुपम रश्मि है । इसमें ससार, उसके तरनेके उपाय, दैव, पुरुषार्थ, तत्त्वज्ञान एवं उसके साधनोंके प्रत्येक अङ्गपर इतना क्रम-क्रमसे विचार किया गया है कि देखते हुए आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है । कल्याणकामी मनुष्योंको इससे अवश्य लाभ उठाना चाहिये यही प्रार्थना है ।

योगवासिष्ठकी आजके आत्म-शान्ति, विश्व-शान्तिके इच्छुक विश्वको चुनौती तथा इस क्षणका ज्ञान-बन्धुत्व एवं ज्ञानाभास

(लेखक—पं० श्रीरामनिवासजी शर्मा)

शास्त्र कहते हैं ज्ञानके बिना मुक्ति नहीं।^१ आधुनिक विद्वान् भी प्रकारान्तरसे यही कहते हैं—

Knowledge is power.

परंतु ज्ञान और ज्ञान-शक्तिमें अन्तर है। ज्ञानसे शक्ति भी प्राप्त होती है जब कि मनुष्य ज्ञानार्थमें ढक जाता है। क्रियाहीन ज्ञान तो शक्तिहीन ही होता है। यह भी न भुलाना चाहिये कि ज्ञानसे शक्ति और मुक्ति तभी प्राप्त होती है, जब कि वह अध्यात्म हो। आजका ज्ञान तो—

१—भौतिक है

२—तर्कमात्र है

३—शिल्पवत् है

४—अवास्तविक है

५—केवल प्रवृत्तिप्राण है

६—यश और जीविकाका साधन है

आजका ऐसा सारहीन अनात्म-ज्ञान योगवासिष्ठके मतसे ज्ञानाभास है और ऐसे ज्ञानका धनी व्यक्ति ज्ञानबन्धु है तथा ज्ञानशिल्पी। वह वास्तविक ज्ञानी नहीं, उससे तो अज्ञानी ही अच्छा है—

आत्मज्ञानं विदुर्ज्ञानं ज्ञानान्यन्यानि यानि तु।

तानि ज्ञानावभासानि सारस्यानवबोधनात् ॥

(यो० बा० ६।२१।५)

अज्ञातारं वरं मन्ये न पुनर्ज्ञानबन्धुताम् ॥

न्याचष्टे यः पठति च शास्त्रभोगाय शिल्पिवत् ॥

(यो० बा० ६।२१।१-३)

हम देखते हैं आज भारत भी ज्ञान-बन्धुता और ज्ञानाभासका शिकार हो रहा है। राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति दोनोंके ही मतसे यह चरित्रहीन होता जा रहा है। भारतेतर देशोंकी दशा तो इससे भी बुरी है। वे तो इस दिशाके गुरु ही हैं, अतः उनका जीवन एकमात्र प्रवृत्ति-प्रधान है एवं समधिक भोगप्रधान।

योगवासिष्ठकारके मतसे तो ज्ञानी वही है जो जानने योग्य वस्तुको जानकर वासनामुक्त तथा कर्मतत्पर होता है—

ज्ञात्वा सम्यगनुज्ञानं दृश्यते येन कर्मसु।

निर्वासनात्मकं ज्ञस्य स ज्ञानीत्यभिधीयते ॥

(यो० बा० ६।२२।२)

१. ऋते ज्ञानात् मुक्तिः।

यो० बा० अं० २—

योगवासिष्ठकार यह भी कहते हैं कि जिसकी इच्छाएँ नान्त हो गयी हों एवं जिसकी शीतलता कृत्रिम न होकर वास्तविक हो तथा जिसका पुनर्जन्मका खटक मिट गया हो, वही ज्ञानी है, अन्यथा खाना-पहनना और लेना-देना आदि तो शिल्पीकी जीविकामात्र है—

अन्तःशीतलतेहासु

प्राज्ञैर्यस्यावलोक्यते।

अकृत्रिमैकशान्तस्य

स ज्ञानीत्यभिधीयते ॥

(यो० बा० ६।२०।३)

अपुनर्जन्मने यः स्याद्वोधः स ज्ञानशब्दभाक्।

वसनाशनदा शेष व्यवस्था शिल्पजीविका ॥

(यो० बा० ६।२०।४)

योगवासिष्ठकारका यह भी मत है कि जो मनुष्य रामना तथा संकल्प-विकल्पसे मुक्त होकर शान्तचित्तसे अवसरानुसार कार्य करता है वही पण्डित है—

प्रवाहपतिते कार्ये कामसंकल्पवर्जितः।

तिष्ठत्याकाशहृदयो यः स पण्डित उच्यते ॥

(यो० बा० ६।२०।५)

योगवासिष्ठके मतसे सच्चा आर्यपुरुष वही है जो कर्मबन्धन पालन करता है और अकर्तव्यसे वचना है एवं प्रहृत आचारविचारमें संलग्न रहता है—

कर्तव्यमाचरन् काममकर्मव्यमनाचरन्।

तिष्ठति प्राकृताचरो यः स आर्य इति स्मृत ॥

(यो० बा० ६।१६।५४)

योगवासिष्ठकारकी आर्यपुरुषलक्षण विषयक यह भी समुद्घोषणा है कि जो व्यक्ति शान्त-सदाचार एवं परिरिति-सम्मत तथा मनःपूत व्यवहार करता है वही आर्य है—

यथाचारं यथाशास्त्रं यथाचित्तं यथास्थितम्।

व्यवहारमुपादत्ते यः स आर्य इति स्मृतः ॥

(यो० बा० ६।१६।५५)

किन्ति निश्चये यह बात छिपी हुई है कि आज मानव आर्योचित योगवासिष्ठ-अभिमत व्यक्तित्वने संस्था दूर होना जा रहा है अपितु वह मानवोचित व्यक्तित्वने न पदवना जगत् विद्वान्, प्रगात्ता, बाबू, हाकिम, वकील आदि विभिन्न पदवना और पुकारा जाता है। पाश्चात्य देशोंमें भी वस्त्रके इस वाक्यका सम्मान दृष्टिगोचर नहीं होना—

Man it does not mean this or that but humanity.

ऐसा क्यों हो रहा है। इसका एकमात्र कारण यही है कि हमारे विश्वविद्यालयोंका आमूल-चूल परिवर्तन नहीं हो पाता। सच्ची सुधार-योजनाओंपर भी अमल नहीं किया जाता और न घर और बाहर वालकोंकी शिक्षा-दीक्षापर ही समुचित ध्यान दिया जाता है। ऐसी दशा में तथाकथित आर्य-व्यक्तित्व वालकोंमें कैसे उत्पन्न हो सकता है? इसी सत्यपर प्रकारान्तरसे राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादजीके ये शब्द पूर्णतः चरितार्थ होते हैं—

हम अपने सामने कितने भी महान् व उच्च आदर्शोंको लेकर जिस-किसी तरहकी राज-व्यवस्था क्यों न स्थापित कर लें, हमारी आर्थिक व सामाजिक विचारधारा कितनी भी समान व उदार क्यों न हो, पर जबतक हमारी अगली पीढ़ीका शारीरिक एवं मानसिक सौष्ठव व गठन गिष्ठ-जीवनमें ही ठीक न होगा, तबतक देशमें हम सुख व शान्ति स्थापित करनेमें सफल नहीं हो सकते।

यहाँ योगवासिष्ठ-सम्मत यह बात भी विचारणीय है कि ज्ञान-विकास और आत्म-ज्ञानप्राप्ति न केवल शास्त्र और गुरु-वचन-साध्य ही है प्रत्युत स्वानुभवका भी विषय है—

शास्त्रार्थं बुध्यते नात्मा गुरुवचनतो न च।

बुध्यते स्वयमेवैष स्वबोधवशातस्ततः ॥

(यो० वा०)

इस समय हम देखते हैं हमारे विद्यार्थी आत्मनिर्भर नहीं हो पाते। वे केवल पुस्तक-क्रीट और परप्रत्ययनेय मति ही बने रहते हैं। वे यह भी नहीं समझते कि पेड़ भीतरसे बढ़ता है, माली और उपकरण तो उसके निमित्तमात्र होते हैं। वे

प्रायः इस वैदिक सत्यसे भी अनभिज्ञ-से ही रहते हैं—

‘आत्मनाऽऽत्मानमुद्धरेत्।’

एतद्विषयक योगवासिष्ठकी तो यह सम्मति है कि आत्म-शान्ति और विश्व-शान्ति आत्म-विकास और आत्म-ज्ञानसे ही प्राप्त होती है, दूसरे किसी उपायसे नहीं। अतएव सर्वदुःख-हर्ता आत्मावलोकनमें ही भूति-विभूतिके इच्छुक व्यक्ति लगा रहे—

करोतु भुवने राज्यं विशत्वम्भोदमम्बुवत्।

आत्मलाभादते जन्तुर्विश्रान्तिमधिगच्छति ॥

(यो० वा० ५।५।२४)

आत्मावलोकने यतः कर्तव्यो भूतिमिच्छता।

सर्वदुःखशिरश्छेद आत्मालोकेन जायते ॥

(यो० वा० ५।७५।४६)

योगवासिष्ठसम्मत आत्मावलोकनसे न केवल आत्म-शान्ति प्राप्त होती है अपितु योगवासिष्ठके बार-बारके पाठ और अवलोकनसे विश्वबन्धुता—प्राणसृष्टणीय नागरिकता भी प्राप्त होती है, जो आजकी अत्यधिक वाञ्छनीय वस्तु है—

एतच्छास्त्रवनाभ्यासात् पौनःपुन्येन वीक्षणात्।

परा नागरतोदेति महत्त्वगुणशालिनी ॥

(यो० वा० ०२।१८।३६, ८)

योगवासिष्ठकारके मतसे योगवासिष्ठ-ग्रन्थावलोकनका एकान्त फल यह भी है—

बोधस्यापि परं बोधं बुद्धिरेति न संशयः ॥

जीवन्मुक्तत्वमस्मिन्स्तु श्रुतिः समनुभूयते^१ ॥

(यो० वा० ०३।८।१३।१५)

भगवान् वसिष्ठकी जय

(लेखक—पं० श्रीसुरजचंदजी सत्यप्रेमी (डॉंगीजी))

योगवासिष्ठके प्रवक्ता भगवान् वसिष्ठका परिचय कराना अत्यन्त कठिन है, फिर भी उनके पारमार्थिक स्वरूपका मनन करना हो तो उनका भगवान्के अवतारोंके साथ क्या सम्बन्ध है? उसे स्मरण किया जाना अनिवार्य आवश्यक है।

मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामके गुरु, भगवान् परशुरामके पिता महर्षि जमदग्नि और भगवान् दत्तात्रेयके मौसा, परम सिद्ध भगवान् कपिल और परमहंस नवयोगीश्वर तथा जड-भरतके पिता भगवान् ऋषभदेवके दादा राजर्षि आग्नीध्रके बहनोई, भगवान् मनुके पुत्र आद्य नरेन्द्र प्रियव्रतकी बहन

देवी देवहूतिके जामाता भगवान् वसिष्ठकी सदा काल जय हो, विजय हो, जिन्होंने संसार-चक्रको छेदन करनेके लिये पुण्य-कर्मका चक्र बताया और पुण्यकर्मके चक्रको भंग करनेके लिये धर्मचक्र चलाया और फिर गुरुचक्रका प्रवर्तन करके सिद्धचक्रमें प्रवेश करा दिया—अज्ञातवादेके परम रहस्यमय सिद्धान्तके आद्य प्रणेता भगवान् वसिष्ठ ही हैं।

इस अद्वैत, तुरीय और अज तत्त्वसे भी परे तुरीयातीत, द्वैताद्वैतातीत और अजाव्ययधर्मातीत परमतत्त्वके प्रणेता भगवान् वसिष्ठ सर्वत्र सर्वथा, सर्वदा सम्पूर्ण आराध्य बनें।

१. इस ग्रन्थके श्रवणसे परम ज्ञान प्राप्त होता है, फिर जीवन्मुक्तिका अनुभव होने लगता है।

योगवासिष्ठका साध्य-साधन

योगवासिष्ठ महाराजमायणका प्रारम्भ होता है—देवराज इन्द्रके द्वारा महर्षि वाल्मीकिसे पास राजा अरिष्टनेमिके भेजे जानेके प्रसङ्गसे । अरिष्टनेमि महर्षि वाल्मीकिसे मोक्षका साधन पूछते हैं । उसके उत्तरमें वाल्मीकिजी महाराज अपने शिष्य भरद्वाजके साथ हुए संवादका वर्णन करते हुए भगवान् रामके प्राकट्यकी बात सुनाते हैं । तदनन्तर महर्षि विश्वामित्रके दशरथ-दरबारमें आकर यशस्वार्थ रामको माँगनेका प्रसङ्ग सुनाकर रामके वैराग्य तथा राम-वसिष्ठ-संवादके रूपमें छः प्रकरणोंमें 'योगवासिष्ठ' नामक विगाल ग्रन्थका श्रवण कराते हैं ।

योगवासिष्ठ अजातवाद या केवल ब्रह्मवादका ग्रन्थ है । इसके सिद्धान्तानुसार एकमात्र चेतनतत्त्व परब्रह्मके अतिरिक्त कोई अन्य सत्ता ही नहीं है । जैसे समुद्रमें अनन्त तरङ्गें उठती-मिटती रहती हैं, वे समुद्रसे भिन्न नहीं हैं, इसी प्रकार नित्य समरूप अनादि अनन्त सच्चिदानन्दधन परमात्म-चैतन्यरूप समुद्रमें नाना प्रकारके अनन्त ब्रह्माण्डोंकी उत्पत्ति, स्थिति और विनाशकी लीला-तरङ्गें दीखती रहती हैं । चित्त या अहंकार—जो वास्तवमें चेतन-ब्रह्मसे अभिन्न तथा ब्रह्मरूप ही है—इस दृश्य-प्रपञ्चका—सृष्टि स्थिति-विनाशका कारण है । अहंकारका नाश होते ही, जो अहंकारकी सत्ता न माननेसे ही नाश हो जाता है, केवल एक ब्रह्म-चैतन्य ही रह जाता है । इसी एक तत्त्वका विभिन्न आख्यानों, इतिहासों, कथाओंके द्वारा इस विशाल ग्रन्थमें प्रतिपादन किया गया है । यह ग्रन्थ पुनरुक्तिपूर्ण है । एक ही सत्य तत्त्वको दृढतापूर्वक हृदयमें जमा देनेके लिये, एक ही सत्य तत्त्वकी अनुभूति या प्राप्ति करा देनेके लिये बार-बार विभिन्न रूपोंसे एक-ही ही युक्तियों तथा उपमाओंका उल्लेख किया गया है ।

सृष्टि न कभी हुई, न है—एकमात्र ब्रह्म ही है । इस प्रकार सृष्टिका अभाव प्रतिपादन करनेपर भी इस ग्रन्थमें कहीं भी यथेच्छाचार, शास्त्रनिषिद्ध व्यवहार, रागद्वेष-कामक्रोधादि-जनित अनाचार, भ्रष्टाचार, दुष्ट-सङ्ग आदिका समर्थन नहीं किया गया है, वरं बड़ी कड़ाईके साथ शास्त्राज्ञापालन-रूप सदाचारपरायणता, एवं त्यागमय पुण्यमय जीवनकी आवश्यकता बतायी गयी है । राग, ममता, कामना, तृष्णा,

इच्छा और इनके मूल अहंकारके त्यागकी मद्द्ता स्थान स्थानपर बतलायी गयी है । इन्द्रियभोगोंमें पड़े हुए मनुष्योंकी घोर दुर्दशाका वर्णन करते हुए वैराग्यकी अत्यन्त प्रयोजनीयताका प्रतिपादन किया गया है । साधक पुरुषको अहभावनारूप ग्रन्थिका यथार्थ ब्रह्मज्ञानके द्वारा भेदन करके सच्चा ज्ञानी बननेका उपदेश दिया गया है, केवल ज्ञानका कथनमात्र करनेवाले 'ज्ञानबन्धु' (नकली ज्ञानी) बननेका नहीं । महर्षि वसिष्ठने यहाँतक कहा है कि 'वे ज्ञानबन्धु (नकली ज्ञानी) से तो अज्ञानीको अच्छा समझते हैं (क्योंकि वह बेचारे अपनेको तथा दूसरोंको धोखा तो नहीं देते ।) महर्षि कहते हैं—

ज्ञानिनैव सदा भाव्यं राम न ज्ञानबन्धुना ।

अज्ञातारं वरं मन्ये न पुनर्ज्ञानबन्धुनाम् ॥

(निर्वाण-प्रकरण ८० २१ । १)

फिर भगवान् श्रीरामके पूछनेपर नकली ज्ञानी (ज्ञान-बन्धु) के लक्षण बतलाते हैं ।

व्याचष्टे यः पठति च शास्त्रं भोगाय शिल्पिवत् ।

यतते न त्वमुद्याने ज्ञानबन्धुः स उच्यते ॥

कर्मस्पन्देषु नो बोधः फलितो यस्य दृश्यते ।

बोधशिल्पोपजीवित्वाज्ज्ञानबन्धुः स उच्यते ॥

वसनाशनमात्रेण तुष्टाः शास्त्रफलानि ये ।

जानन्ति ज्ञानबन्धूंस्तान्विद्याच्छास्त्रार्थशिल्पिनः ॥

(निर्वाण-प्रकरण ८० २१ । ३-५)

जैसे शिल्पी जीविकाके लिये ही शिल्परतन्य मीन्यता है, वैसे ही जो मनुष्य केवल भोगप्राप्तिके लिये ही शास्त्रको पढ़ता और उसकी व्याख्या करता है, स्वयं शास्त्रके अन्तर आचरणके लिये प्रयत्न नहीं करता, वह ज्ञानबन्धु कहलाता है । शास्त्राध्ययनसे जितने शास्त्रिक बोध हो गता है परंतु उस बोधका फल, जो विनाशशील भोगों—व्यवहारमें वैराग्य होना चाहिये, सो नहीं हुआ तो उसका वह शास्त्रज्ञान शिल्पमात्र है—तत्त्वज्ञानकी बातें बनाकर दूसरोंको ठगनेके लिये चातुर्वर्ण्य कलामात्र है । उस कलासे केवल जीविग चलानेवाला होनेके कारण वह मनुष्य ज्ञानबन्धु कहलाता है । जो केवल भोजन-वस्त्रमें ही संतुष्ट रहकर भोजनादिकी प्रतिकी ही शास्त्राध्ययनका फल समझते हैं, वे शास्त्रोंके अर्थको एक

शिल्पकला ही मानते हैं । ऐसे लोगोंको ज्ञानबन्धु जानना चाहिये ।' फिर कहते हैं—

अपुनर्जन्मने यः स्याद् बोधः स ज्ञानशब्दभाक् ।

वसनाशनदा शेषा व्यवस्था शिल्पजीविका ॥

(निर्वाण-प्रकरण ७० । २२ । ४)

‘जिससे मोक्षकी प्राप्ति होती है, पुनर्जन्मकी नहीं, उसीका नाम ज्ञान है । उसके अतिरिक्त दूसरा जो शब्दज्ञानका चातुर्य है, वह तो रोटी-कपड़ा प्राप्त करनेकी कलामात्र है । उसे केवल भोजन-वस्त्र जुटानेवाली व्यवस्था समझना चाहिये ।’

इस परम ज्ञानकी प्राप्तिके लिये शम (मनकी स्वशता-), दम (इन्द्रियनिग्रह), शास्त्रीय सदाचारका सेवन, दैवी सम्पत्तिके गुणोंका अर्जन तथा भोग-वैराग्यपूर्वक ज्ञान-प्राप्तिकी इच्छासे सद्गुरुके शरणमें जाना आवश्यक है । सद्गुरु वही है, जो शिष्यके अज्ञानान्धकारको अपने निर्मल स्वप्रकाश ज्ञानकी विमल ज्योतिसे हर ले और शिष्य वही है, जो विनय तथा सेवापरायण होकर ज्ञानी गुरुसे प्रश्न करे और उनके आज्ञानुसार अपना जीवन निर्माण करे । महर्षि वसिष्ठ कहते हैं—

अतस्त्वश्मनादेयवचनं वाग्विदांवर ।

यः पृच्छति नरं तस्मान्नास्ति मूढतरोऽपरः ॥

प्रामाणिकस्य तज्ज्ञस्य वक्तुः पृष्टस्य यत्नतः ।

नानुतिष्ठति यो वाक्यं नान्यस्तस्मान्नराधमः ॥

(सुसुक्षु-प्रकरण ११ । ४५-४६)

“वाग्देवताओंमें श्रेष्ठ राम ! जो तत्त्वका ज्ञान नहीं रखता, उसके वचन मानने योग्य नहीं हैं । ऐसे तत्त्वज्ञानहीन मनुष्यसे जो तत्त्वविषयक प्रश्न करता है, उससे बढ़कर दूसरा कोई ‘मूर्ख’ नहीं है ।” (साथ ही, जो मनुष्य किसी सच्चे ज्ञानी महात्मासे) “पूछकर भी उस प्रमाणकुशल तथा तत्त्वज्ञानी वक्ताके उपदेशके अनुसार यत्नपूर्वक आचरण नहीं करता, उससे बढ़कर ‘नराधम’ भी दूसरा कोई नहीं है ।”

अतएव न तो बिना जाने-समझे किसीसे पृछना चाहिये तथा न तत्त्वज्ञ महात्माका उपदेश प्राप्त करके उसकी अवहेलना ही करनी चाहिये । साथ ही तत्त्वज्ञ पुरुषको भी चाहिये कि वे यथार्थ अधिकारीकी ही तत्त्वका उपदेश दें । महर्षि कहते हैं—

पूर्वापरसमाधानक्षमबुद्ध्यावनिन्दिते ।

पृष्टं प्राज्ञेन वक्तव्यं नाधमे पशुधर्मिणि ॥

प्रामाणिकार्थयोग्यत्वं पृच्छकस्याविचार्यं च ।

यो वक्ति तमिह प्राज्ञाः प्राहुर्मूढतरं नरम् ॥

(सुसुक्षु-प्रकरण ११ । ४९-५०)

‘ज्ञानी महात्माको चाहिये कि पूर्वापरका विचार करके यथार्थ निश्चय करनेमें जिसकी बुद्धि समर्थ हो, जिसके आचरण निन्दनीय न हों, ऐसे ही पुरुषको उसके पूछे हुए तत्त्वका उपदेश दे । जो आहार-निद्रा, भय-मैथुन आदि पशुधर्मसे सयुक्त है, ऐसे अधमको उपदेश न दे । प्रश्नकर्तामें श्रुति आदि प्रमाणोंके द्वारा निर्णय किये हुए तत्त्व-पदार्थको ग्रहण करनेकी योग्यता है या नहीं, इसका विचार किये बिना ही जो वक्ता उसे उपदेश देता है, उसको ज्ञानीजन इस लोकमें महान् मूढ बतलाते हैं ।’

इसीलिये महर्षि वसिष्ठ आदर्श गुरु हैं तथा भगवान् रामचन्द्र आदर्श शिष्य हैं । गुरु-शिष्यको इन्हींका अनुसरण करनेवाले होना चाहिये ।

सुसुक्षुके जीवनमें सहज ही शास्त्रानुकूल आचरण, संयम, सत्य, शम, दम, विषय-वैराग्य और मोक्षकी तीव्र इच्छा होनी ही चाहिये । महर्षि वसिष्ठ तो शम, दम सत्यादि गुणोंसे रहित मनुष्यको मनुष्य ही नहीं मानते । वे कहते हैं—

येषां गुणेष्वसंतोषो रागो येषां श्रुतं प्रति ।

सत्यव्यसनिनो ये च ते नराः पशवोऽपरे ॥

(स्थिति-प्रकरण ३२ । ४२)

‘जिनका (इन शम-दमादि) गुणोंके विषयमें संतोष नहीं है (इनको जो बढ़ाना ही चाहते हैं), जिनका शास्त्रके प्रति अनुराग है तथा जिनको सत्यके आचरणका ही व्यसन है, वे ही वास्तवमें मनुष्य हैं, दूसरे तो पशु ही हैं ।’

अतएव सच्चे कल्याणकामी पुरुषोंको इन शास्त्रानु-मोदित गुणोंसे सम्पन्न होकर परमात्माके यथार्थ ज्ञानकी प्राप्ति-के लिये पूर्णरूपसे साधनाभ्यास करना चाहिये । इसके लिये सच्चे महात्मा पुरुषोंका सङ्ग तथा सेवन (उनके कथनानुसार जीवन-निर्माण) आवश्यक है । इसके बिना कोरे तप, तीर्थ या शास्त्राध्ययनसे सफलता नहीं मिलती । पर महात्मा सच्चे होने चाहिये । और कुछ न हो तो इतना अवश्य देख ले कि हम जिनका सङ्ग करते हैं, उनकी संगतिसे दुर्गुणों-दुराचारोंका

नाश होता है या नहीं। उनके जीवनगत सहज नास्त्रप्रतिपादित आचरणोंसे हमें दुराचार-दुर्गुणोंके त्याग और सदाचार-सद्गुणोंके ग्रहणके लिये प्रेरणा मिलती है या नहीं। महर्षि वसिष्ठ कहते हैं—

लोभमोहरुषां यस्य तनुतानुदिनं भवेत् ।
यथाशास्त्रं विहरति स्वकर्मसु स सज्जनः ॥
(स्थिति-प्रकरण ३३। १५)

‘जिसके सङ्गसे लोभ, मोह और क्रोध प्रतिदिन क्षीण होते हों और जो शास्त्रके अनुसार अपने कर्मोंका आचरण करनेमें लगा रहता हो, वह सत् पुरुष है।’

मोक्षके द्वारपर निवास करनेवाले ये चार द्वारपाल बतलाये गये हैं—शम, विचार, सतोष और साधुसङ्ग। इन चारोंकी भलीभाँति सेवा की जाती है तो ये मोक्षरूपी राज-प्रासादका द्वार खोल देते हैं।

ऐसे सैकड़ों, हजारों वचन इस महान् ग्रन्थमें हैं, जिनमें शास्त्रोक्त आचरण, संयम, नियम आदि साधनोंकी उपादेयता और नितान्त प्रयोजनीयताका उपदेश भरा है।

योगवासिष्ठमें दैवकी बड़ी निन्दा तथा पौरुषकी प्रशंसा की गयी है। एवं निष्कामभावसे सावधानीके साथ शास्त्रानुकूल सत्कर्म करनेपर बहुत जोर दिया गया है। महर्षि वसिष्ठ कहते हैं—

यस्तुदारचमत्कारः सदाचारविहारवान् ।
स निर्याति जगन्मोहान्मृगेन्द्रः पञ्चरादिव ॥
(समुद्ध-प्रकरण ६। २८)

व्यवहारसहस्राणि यान्युपायान्ति यान्ति च ।
यथाशास्त्रं विहर्तव्यं तेषु त्यक्त्वा सुखसुखे ॥
यथाशास्त्रमनुच्छिन्नां मर्यादां स्वामनुज्झतः ।
उपतिष्ठन्ति सर्वाणि रत्नान्यम्बुनिधाविव ॥
स्वार्थप्रापककार्यैकप्रयत्नपरतां दुषैः ।
प्रोक्ता पौरुषशब्देन सा सिद्धयै शास्त्रयन्त्रिता ॥

(समुद्ध-प्रकरण ६। ३०-३२)

‘जो पुरुष उदार-स्वभाव तथा सत्कर्मके सम्पादनमें कुशल है, सदाचार ही जिसका विहार है, वह जगत्के मोह-पाशसे

वैसे ही निकल जाता है, जैसे पिंजरेमें सिंह। गनारमें आने जानेवाले सहस्रों व्यवहार हैं। उनमें सुख और दुःख-बुद्धि-मग्न त्याग करके शास्त्रानुकूल आचरण करना चाहिये। शास्त्रके अनुकूल और कभी उच्छिन्न न होनेवाली अपनी मर्यादाका जो त्याग नहीं करता, उस पुरुषको समस्त अभीष्ट वस्तुएँ देने ही प्राप्त हो जाती हैं, जैसे सागरमें गोता लगानेवालेने रत्नोंका समूह। जिसमें अपना मानव-जीवनका प्रधान कार्य—न्यार्थ सघता हो, उस स्वार्थकी प्राप्ति करानेवाले साधनोंमें ही तत्पर हो रहनेको विद्वान्लोग ‘पौरुष’ कहते हैं।’

ये समुद्योगमुत्सृज्य स्थिता दैवपरायणाः ।
ते धर्ममर्थं कामं च नाशयन्त्यात्मविद्विपः ॥
(समुद्ध-प्रकरण ७। १)

‘जो लोग उद्योगका त्याग करके केवल दैवके भरोने बैठे रहते हैं, वे अपने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंका नाश कर डालते हैं। वे आलसी मनुष्य आप ही अपने शत्रु हैं।’

अशुभेषु समाविष्टं शुभेष्वेवावतारयेत् ।
प्रयत्नाच्चित्तमित्येष सर्वशास्त्रार्थमग्रह ॥
यच्छ्रेयो यदतुच्छं च यदपायविवर्जितम् ।
तत्तदाचर यत्नेन पुत्रेति गुरवः स्थिताः ॥
(समुद्ध-प्रकरण ७। १२-१३)

‘अशुभ कर्मोंमें लगे हुए मनको बहने हटाकर प्रयत्नपूर्वक शुभ कर्मोंमें लगाना चाहिये। यह नव शास्त्रोंके सारका मग्न है। जो वस्तु कल्याणकारी है, वह तुच्छ नहीं है (वरी सबसे श्रेष्ठ है)। तथा जिसका कभी नाश नहीं होता, उन्हीं यत्नपूर्वक आचरण करना चाहिये—गुरुजन वरी उन्हीं देते हैं।’

जीवन्मुक्तके लक्षण बतलाते हुए महर्षि वसिष्ठ बतते हैं—

यथास्थितमिदं यस्य व्यवहारवतोऽपि च ।
अस्तं गतं स्थितं ध्योम जीवन्मुक्तः स उच्यते ॥
बोधैकनिष्ठतां यातो जाग्रन्नेव सुषुप्तवत् ।
य आत्मे व्यवहर्तैव जीवन्मुक्तः स उच्यते ॥
नोदेति नास्त्रमायाति सुखे दुःखे सुगन्धनम् ।
यथाप्राप्तस्थितैर्यस्य जीवन्मुक्तः स उच्यते ॥

यो जागर्ति सुषुप्तस्यो यस्य जाग्रन्न विद्यते ।
 यस्य निर्वासनो बोधो जीवन्मुक्तः स उच्यते ॥
 यस्य नाहंकृतो भावो यस्य बुद्धिर्न लिप्यते ।
 कुर्वतोऽकुर्वतो वापि स जीवन्मुक्त उच्यते ॥
 यस्योन्मेषनिमेषाद्धाद्विदः प्रलयसम्भवौ ।
 पश्येत् त्रिलोक्याः स्वसमः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥
 यस्माद्वोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
 हर्षामर्षभयोन्मुक्तः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥
 शान्तसंसारकलनः कलावानपि निष्कलः ।
 यः सचित्तोऽपि निश्चितः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥

(उत्पत्ति-प्रकरण ९ । ४-७, ९-१२)

‘यथायोग्य व्यवहार करते हुए भी जिस पुरुषकी दृष्टिमें यह जगत् ज्यों-का-त्यों बना हुआ ही विलीन हो जाता है और आकाशके समान शून्य प्रतीत होने लगता है, वह जीवन्मुक्त कहलाता है। जो व्यवहारमें लगा हुआ ही एकमात्र बोधनिष्ठा-को प्राप्त होकर जाग्रत्-अवस्थामें भी सुषुप्त पुरुषकी भाँति राग-द्वेष तथा हर्ष-शोकादिसे रहित हो जाता है, उसे जीवन्मुक्त कहते हैं। जिसके मुखकी कान्ति मुखमें उदित नहीं होती—जगमगाती नहीं और दुःखमें अस्त—फीकी नहीं हो जाती और जो कुछ मिल जाय उसीमें संतोषपूर्वक जो जीवन-निर्वाह करता है, वह जीवन्मुक्त कहा जाता है। जो निर्विकार आत्मामें सुषुप्तिकी तरह स्थित रहता हुआ भी अविद्यारूप निद्राका निवारण हो जानेसे सदा जागता रहता है, पर जो जाग्रत् भी नहीं है, भोग-जगत्में सदा सोया हुआ है अर्थात् भोगबुद्धिसे जो किसी भी पदार्थका उपभोग नहीं करता और जिसका ज्ञान वासनारहित है, वह जीवन्मुक्त कहलाता है। जिसमें अहङ्कारका भाव नहीं है, जिसकी बुद्धि कर्म करते समय कर्तृत्वके और कर्म न करते समय अकर्तृत्वके अभिमानसे लिप्त नहीं होती, वह जीवन्मुक्त कहलाता है। जो ज्ञानस्वरूप परमात्माके किञ्चित् उन्मेष तथा निमेषमें ही तीनों लोकोंकी प्रलय तथा उत्पत्ति देखता है और जिसका सवके प्रति समान आत्मभाव है, वह जीवन्मुक्त कहलाता है। न तो जिससे लोगोंको उद्वेग होता है और न लोगोंसे जिसको उद्वेग होता है तथा जो हर्ष, अमर्ष और भयसे रहित है, वह जीवन्मुक्त कहा जाता है। जिसकी ससारके प्रति सत्यता-बुद्धि नहीं रही है, जो अवयवयुक्त दीखनेपर भी वस्तुतः अवयव-

रहित है। जो चित्तयुक्त होकर भी वास्तवमें चित्तसे रहित है, वह जीवन्मुक्त कहा जाता है।’ जीवन्मुक्तकी इस स्वरूप-व्याख्यासे पता लगता है कि यथार्थ ज्ञान ही जीवन्मुक्तका स्वरूप होता है। केवल मौखिक ज्ञान तो प्रदर्शनमात्र तथा धोखेकी चीज है।

योगवासिष्ठमें योगके साधन तथा योगसिद्धियोंका एवं योगभूमिकाओंका भी महत्त्वपूर्ण प्रतिपादन है। उनका मर्म विना अनुभवी योगसिद्ध गुरुके समझमें आना बहुत कठिन है। योगवासिष्ठमें दर्शन तथा योगसम्बन्धी ऐसे-ऐसे शब्द आये हैं, जिनका अर्थ समझना केवल भाषाज्ञानसाध्य नहीं, परंतु साधन-साध्य है।

योगवासिष्ठमें कर्म और भक्तिका कहीं निषेध नहीं है। कर्मकी तो परमावश्यकता ही बतलायी है। पौरुष कर्ममय ही होता है। अवश्य ही वह कर्म होना चाहिये कामना, आसक्ति तथा अहकारसे रहित। यद्यपि भक्तिका वैष्णवशास्त्रों-जैसा वर्णन नहीं है, तथापि सदाचार-सत्सङ्गमूलक उपासनाका जगह-जगह प्रतिपादन है। प्रह्लादके प्रसङ्गसे भक्तिकी भी बहुत बातें आयी हैं। भगवान् श्रीरामचन्द्रको पूर्णब्रह्म बतलाकर स्वयं वसिष्ठने नमस्कार किया है। महर्षि भरद्वाजने अपने तथा भगवान् श्रीरामचन्द्रजीमें भेद बतलाते हुए महर्षि वाल्मीकिजीसे कहा है—

श्रीरामचन्द्रजी तो परम योगी, समस्त विश्वके वन्दनीय, देवताओंके ईश्वर, अजन्मा, अविनाशी, विशुद्ध ज्ञान-स्वभाव, समस्त गुणोंके निधान, सम्पूर्ण ऐश्वर्योंके आधार एव तीनों लोकोंके उत्पादन, संरक्षण और अनुग्रह करनेवाले हैं—

‘स खलु परमयोगी विश्वबन्धः सुरेशो

जननमरणहीनः शुद्धबोधस्वभावः ।

सकलगुणनिधानं सन्निधानं रमाया-

स्त्रिजगदुदयरक्षानुग्रहाणामधीशः ॥

(नि० प्र० पूर्वार्ध० १२७ । २)

महर्षि विश्वामित्रने भगवान् श्रीरामचन्द्रकी बहुत बड़ी महिमाका गान किया है और वसिष्ठादि सभी उसे सुनकर अत्यन्त आह्लादित हुए हैं।

रही श्रीरामचन्द्रजीका अज्ञानी बनकर ज्ञान प्राप्त करनेकी

वात, सो लीलामय भगवान्‌के लिये इसमें कौन-सी दोषकी बात है। जो भगवान् श्रीरामचन्द्र विद्यार्थी बनकर गुरु वसिष्ठसे विद्याध्ययन करते हैं, विश्वामित्रसे अस्त्र-शिक्षा ग्रहण करते हैं, सन्धे पतिके रूपमें सीताके दुःखसे महान् दुखी होते हैं, स्त्रैण तथा अज्ञकी भौति सीताके लिये बन-बन रोते फिरते और जिस-किसीसे सीताका पता पूछते हैं, लक्ष्मण-के लिये विलाप-प्रलाप करते हैं, वे भगवान् यदि लोक-संग्रहके लिये अज्ञानी, वैराग्यवान् तथा मुमुक्षु सज्जक आदर्श शिष्य-लीलामें प्रवृत्त होकर महर्षि वसिष्ठको ज्ञानगात्रके प्रतिपादन-में प्रवृत्त करते हैं और उसे सुनकर अपनेको कृतार्थ मानते हैं तो इससे उनकी परात्परता, परब्रह्मरूपता, विशुद्धज्ञानस्वरूपता, ईश्वरता आदिमें कहीं कुछ कमी आ जाती हो, यह तो मानना ही भूल है।

कुछ सज्जनोंका कथन है कि योगवासिष्ठमें बहुत अनुचित-रूपसे नारी-निन्दा की गयी है, पर वस्तुतः ऐसी भी बात नहीं है।

जो तो भोगदृष्टिमें जो कुछ भी आनन्द-गमना करनेवाली चीजें हैं, परमार्थ क्षेत्रमें वे सभी निन्दनीय तथा त्याग्य हैं—नारी, धन, राज्य, इन्द्रियोंके प्रत्येक विषय। पर योगवासिष्ठमें 'नारी-गौरव'की प्रतिष्ठा है। शिखिध्वज-जैने राजान्यनी अरण्यवासी तपोमूर्ति पुरुषको चूडाला नारी ही दिग्गज जनना उपदेश करके उन्हें परमपद प्राप्त करवाती है तथा अद्वैतार्थ होकर राजकर्मके प्रतिपालनमें प्रवृत्त कराती है। चूडाला जैनी योगसिद्धा, ज्ञान-विज्ञानसम्पन्ना, ब्रह्मरुनिष्ठ-ब्रह्मन्वयानारीन जिस ग्रन्थमें विशद वर्णन हो ओर नारी इतनी उच्च नरतरक पहुँच सकती है, इसका जिनमें प्रतिपादन हो, उग ग्रन्थको नारी-निन्दक मानना कभी युक्तिसंगत नहीं है।

योगवासिष्ठमें सुन्दर-सुन्दर आख्यानों, इतिहासोंके द्वारा बड़ी ही सुन्दर रीतिसे ब्रह्मेकतत्त्वका प्रतिपादन हुआ है, जो एक महान् कार्य है। इसमें दोगदृष्टि न करके सभीको अपनी रुचि तथा भावके अनुसार यथामात्र लाभ उठाना चाहिये।

योगवासिष्ठका दुरुपयोग नहीं होना चाहिये

(लेखक—भक्त श्रीरामगणदासजी)

'कल्याण'का विशेषाङ्क योगवासिष्ठाङ्क निकल रहा है, यह बड़े ही आनन्दकी बात है। यह यदा ही उपादेय सर्वश्रेष्ठ ज्ञानप्रतिपादक महान् ग्रन्थ है। इसमें आत्मा-परमात्मा, जीव-जगत्, बन्धन-मोक्ष आदि दुरूह विषयोंका बहुत ही सुन्दर स्पष्टीकरण किया गया है। अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक स्वयं परमात्मा भगवान् श्रीराघवेन्द्र और परम पूज्य ज्ञानस्वरूप महर्षि वसिष्ठके संवादरूपमें यह निरुसंश्लेष अत्युत्कृष्ट ग्रन्थ है। इसलिये इसका प्रकाशन बहुत ही आदरणीय है। परन्तु बड़े खेदके साथ निवेदन करने हुए मैं यह नम्रताके साथ चेतावनी देता हूँ कि इसका दुरुपयोग नहीं होना चाहिये। मैंने देखा है कि लोगों ने इसका वेष बनाकर 'योगवासिष्ठ' और 'विचारसागर' लिये गाँव गाँव घूमते हैं, चैला-चैली बनाते हैं। शारीर वर्णाश्रमधर्म, सदाचार, शम, दम, ईश्वरभक्ति, भगवत्पूजन, नामजप कीर्तन, संध्या-अर्चना, आत्म-निरूपण आदिका घोर विरोध करके लोगोंको उच्छृङ्खल बनाते हैं। उनको मनमाना आचरण करनेके लिये प्रेरणा देते हैं और अपना उल्लू सीधा करनेके लिये जगत्को तथा जागतिक व्यवहारोंको मिथ्या बनाकर 'अर्थ' ब्रह्मन्नि की रट लगाकर 'एक ब्रह्म' बने हुए ये अनधिकारी कलियुगी पाखण्डीलोग खुले-आम शास्त्रान्तरके विरुद्ध आलस्य, प्रमाद, अकर्मण्यता, विलास, व्यभिचार, अभक्ष्य-भक्षणका प्रचार करते हैं और जनताको ब्रह्मज्ञानके नामपर नरकानलमें झोंकते हैं। ऐसे लोगोंके द्वारा इसका दुरुपयोग नहीं होना चाहिये। यही मेरा नम्र निवेदन है।

श्रीगुरुवर-वसिष्ठ-स्तवन

(रचयिता—पं० श्रीरामनारायणजी त्रिपाठी 'मित्र' शास्त्री)

तप-तेज-पुंज जगदाभिराम ।

गुरुवर वसिष्ठ ! तुमको प्रणाम ॥

चारों वेदोंका रस वरिष्ठ ।

वेदान्त विषय जो था गरिष्ठ ॥

कर सरल कथाओंमें प्रविष्ठ ।

कर दिया उसे लघुतम सुमिष्ठ ॥

यह देख तुम्हारा कलित काम ।

गुरुवर वसिष्ठ ! तुमको प्रणाम ॥

यह युक्ति दिखाकर तुम न्यारी ।

वन गये विश्वके हितकारी ॥

अतण्व ज्ञानके अधिकारी ।

हैं सभी तुम्हारे आभारी ॥

गा रहे तुम्हारे गुणग्राम ।

गुरुवर वसिष्ठ ! तुमको प्रणाम ॥

यह ग्रन्थ मिटा विप-विषय चाव ।

अध्यात्म ओर करता झुकाव ॥

हर जीव ब्रह्मका भेदभाव ।

वन रहा भवास्त्रुधि हेतु नाव ॥

यह श्रेय तुम्हींको है ललाम ।

गुरुवर वसिष्ठ ! तुमको प्रणाम ॥

जिस समय सूर्यवंशी नरेश ।

संचालित करते थे स्वदेश ॥

उस समय उन्हें दे सदुपदेश ।

हरते थे तुम मानसिक क्लेश ॥

पाते थे वे जगसे विराम ।

गुरुवर वसिष्ठ ! तुमको प्रणाम ॥

हैं इसमें वर्णित वे सुयोग ।

हरते हैं जो भवजनित रोग ॥

जिनका समयोचित कर प्रयोग ।

पाते हैं शुभगति साधु लोग ॥

खण्डित कर माया मोह दाम ।

गुरुवर वसिष्ठ ! तुमको प्रणाम ॥

श्रीरामचन्द्रको पात्र जान ।

जो दिया उन्हें था महाज्ञान ॥

मुनि वाल्मीकिने अमृत मान ।

वह भरा सुछन्दोंमें निदान ॥

उपदेश तुम्हारा है विचित्र ।

जो करता है हियको पवित्र ॥

जिससे जन बनकर सच्चरित्र ।

हो जाते हैं ब्रह्मज्ञ 'मित्र' ॥

रच ग्रन्थ योगवासिष्ठ नाम ।

गुरुवर वसिष्ठ ! तुमको प्रणाम ॥

मिलता है उनको परम धाम ।

गुरुवर वसिष्ठ ! तुमको प्रणाम ॥



श्रीपरमात्मने नमः

संक्षिप्त योगवासिष्ठ

वैराग्य-प्रकरण ✓

सुतीक्ष्ण और अगस्ति, कारुण्य और अग्निवेश्य, सुरुचि तथा देवदूत और अरिष्टनेमि
एवं वाल्मीकिके संवादका उल्लेख करते हुए भगवान्‌के श्रीरामावतारमें
ऋषियोंके शापको कारण बताना

यतः सर्वाणि भूतानि प्रतिभान्ति स्थितानि च ।
यत्रैवोपशमं यान्ति तस्मै सत्यात्मने नमः ॥

सृष्टिके आरम्भमें सम्पूर्ण भूत जिनसे प्रकट होकर
प्रतीतिके विषय होते हैं, स्थितिकालमें जिनमें ही स्थित
होते हैं और प्रलयकाल आनेपर जिनमें ही लीन हो जाते
हैं, उन सत्यस्वरूप परमात्माको नमस्कार है ।

ज्ञाता ज्ञानं तथा ज्ञेयं द्रष्टा दर्शनदृश्यभूः ।
कर्ता हेतुः क्रिया यस्मात् तस्मै ज्ञप्त्यात्मने नमः ॥

ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय; द्रष्टा, दर्शन और दृश्य तथा
कर्ता, कारण और क्रिया—इन सबका जिनसे ही
आविर्भाव होता है, उन ज्ञानस्वरूप परमात्माको नमस्कार है ।

स्फुरन्ति सीकरा यस्मादानन्दस्याम्बरेऽचनौ ।
सर्वेषां जीवनं तस्मै ब्रह्मानन्दात्मने नमः ॥

जिनसे स्वर्ग और भूतल आदि सभी लोकोमें आनन्द-
रूपी जलके कण स्फुरित होते हैं—प्राणियोंके अनुभवमें
आते हैं तथा जो समस्त जीवोंके जीवनाधार हैं, उन
पूर्ण चिन्मय आनन्दके महासागररूप परब्रह्म परमात्माको
नमस्कार है ।

पूर्वकालमें सुतीक्ष्ण नामसे प्रसिद्ध कोई ब्राह्मण थे,
जिनके मनमें संशय छा गया था; अतः उन्होंने महर्षि
अगस्तिके आश्रममें जाकर उन महामुनिसे आदरपूर्वक
पूछा—‘भगवन् ! आप धर्मके तत्त्वको जानते हैं । आपको
सम्पूर्ण शास्त्रोंके सिद्धान्तका सुनिश्चित ज्ञान है । मेरे

हृदयमें एक महान् संदेह है, आप कृपापूर्वक इसका
समाधान कीजिये । मोक्षका साधन कर्म है या ज्ञान है
अथवा दोनों ही हैं ? इन तीनों पक्षोंमेंसे किसी एकका
निश्चय करके जो वास्तवमें मोक्षका कारण हो, उसका
प्रतिपादन कीजिये ।’



अगस्तिने कहा—ब्रह्म ! जैसे दोनों ही पक्षोंमें
पक्षियोंका आकाशमें उड़ना सम्भव होता है, उसी प्रकार
ज्ञान और निष्काम कर्म दोनोंने ही परमजन्मकी प्राप्ति
होती है । इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास है, जिसका

१. अगस्ति और अगस्त्य एक ही महर्षिके नाम हैं ।

मैं तुम्हारे समक्ष वर्णन करता हूँ। पहलेकी बात है, कारुण्य नामसे प्रसिद्ध एक ब्राह्मण थे, जो अग्निवेश्यके पुत्र थे। उन्होंने सम्पूर्ण वेदोका अध्ययन किया था तथा वे वेद-वेदाङ्गोके पारंगत विद्वान् थे। गुरुके यहाँसे विद्या पढ़कर अपने घर लौटनेके बाद वे संध्या-वन्दन आदि कोई भी कर्म न करते हुए चुपचाप बैठे रहने लगे। उनके मनमें संशय भरा हुआ था। पिता अग्निवेश्यने देखा कि मेरा पुत्र शास्त्रोक्त कर्मोका परित्याग करके निन्दनीय हो गया है, तब वे उसके हितके लिये इस प्रकार बोले।

अग्निवेश्यने कहा—वेद्य ! यह क्या बात है ? तुम अपने कर्तव्य-कर्मोका पालन क्यों नहीं करते ? बताओ तो सही। यदि सत्कर्मोके अनुष्ठानमें नहीं लगोगे तो तुम्हें परम सिद्धि कैसे प्राप्त होगी ? तुम जो इस कर्तव्य-कर्मसे निवृत्त हो रहे हो, इसमें क्या कारण है ? यह मुझसे कहो।



कारुण्य बोले—पिताजी ! आजीवन अग्निहोत्र और

प्रतिदिन संध्योपासना करे—इस प्रवृत्तिरूप धर्मका श्रुति और स्मृतिने विधान अथवा प्रतिपादन किया है। साथ ही एक दूसरी श्रुति भी है, जिसके अनुसार न धनसे, न कर्मसे और न संतानके उत्पादनसे ही मोक्ष प्राप्त होता है। मुख्य-मुख्य यतियोने एकमात्र त्यागसे ही अमृतस्वरूप मोक्ष-सुखका अनुभव किया है। पूज्य पिताजी ! इन दो प्रकारकी श्रुतियोमेंसे मुझे किसके आदेशका पालन करना चाहिये ?' इस संशयमें पड़कर मैं कर्मकी ओरसे उदासीन हो गया हूँ।

अगस्ति कहते हैं—तात सुतीक्ष्ण ! पितासे यह कहकर वे ब्राह्मण कारुण्य चुप हो गये। पुत्रको इस प्रकार कर्मसे उदासीन हुआ देख पिताने पुनः उससे कहा।

अग्निवेश्य बोले—वेद्य ! मैं तुमसे एक कथा कहता हूँ, उसे सुनो और उसके सम्पूर्ण तात्पर्यका अपने हृदयमें निश्चय कर लेनेके पश्चात् तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वैसा करो।

सुरुचि नामसे प्रसिद्ध कोई देवलोककी स्त्री थी, जो अप्सराओंमें श्रेष्ठ समझी जाती थी। एक दिन वह मयूरोके झुंडसे घिरे हुए हिमालयके एक शिखरपर बैठी थी। उसी समय उसने अन्तरिक्षमें इन्द्रके एक दूतको कहीं जाते देखा। उसे देखकर अप्सराओंमें श्रेष्ठ महाभाग सुरुचिने इस प्रकार पूछा—‘महाभाग देवदूत ! आप कहाँसे आ रहे हैं और इस समय कहाँ जायँगे ? यह सब कृपा करके मुझे बताइये।’

देवदूतने कहा—भद्रे ! सुनो; जो वृत्तान्त जैसे घटित हुआ है, वह सब मैं तुम्हें विस्तारसे बता रहा हूँ। सुन्दर भौंहोवाली सुन्दरी ! धर्मात्मा राजा अरिष्टनेमि अपने पुत्रको राज्य देकर स्वयं वीतराग हो तपस्याके लिये वनमें चले गये और अब गन्धमादन पर्वतपर वे तपस्या

१. न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैकैः अमृतत्वमानुशुः।

(कैवल्य० २ तथा महानारायणोपनिषद् १०।५)

कर रहे हैं। वहाँ वनमें ज्यो ही उन्होंने दुस्तर तपस्या आरम्भ की, त्यो ही देवराज इन्द्रने मुझे आदेश दिया—
‘दूत ! तुम यह विमान लेकर शीघ्र वहाँ जाओ। इस विमानमें अप्सराओके समुदायको भी साथ ले लो। नाना प्रकारके वाद्य इसकी शोभा बढ़ाते रहें। गन्धर्व, सिद्ध, यक्ष और किन्नर आदिसे भी यह सुशोभित होना चाहिये। इसमें ताल, वेणु और मृदङ्ग आदि भी रख लो। इस प्रकार भौंति-भौंतिके वृक्षोंसे भरे हुए सुन्दर गन्धमादन पर्वतपर पहुँचकर तुम राजा अरिष्टनेमिको इस विमानपर चढ़ा लो और उन्हें स्वर्गका सुख भोगनेके लिये अमरावती नगरीमें ले जाओ।’

देवराज इन्द्रकी यह आज्ञा पाकर मैं सामग्रियोसे संयुक्त विमान ले उस पर्वतपर गया। वहाँ पहुँचकर राजा अरिष्टनेमिके आश्रमपर गया; फिर मैंने देवराज इन्द्रकी सारी आज्ञा राजासे कह सुनायी। शुभे ! वे मेरी बात सुनकर संदेहमें पड़ गये और इस प्रकार बोले—
‘देवदूत ! मैं आपसे एक बात पूछना चाहता हूँ, आप मेरे इस प्रश्नका उत्तर दें। स्वर्गमें कौन-कौन-से गुण हैं और कौन-कौन-से दोष ? आप मेरे सामने उनका सुस्पष्ट वर्णन कीजिये। स्वर्गलोकमें रहनेके गुण-दोषको जाननेके पश्चात् मेरी जैसी रुचि होगी, वैसा करूँगा।’

मैंने कहा—‘राजन् ! स्वर्गलोकमें जीव अपने पुण्यकी सामग्रीके अनुसार उत्तम सुखका उपभोग करता है। उत्तम पुण्यसे उत्तम स्वर्गकी प्राप्ति होती है, मध्यम पुण्यसे मध्यम स्वर्ग मिलता है और इनकी अपेक्षा निम्न श्रेणीके पुण्यसे उसके अनुरूप स्वर्ग सुलभ होता है। इसके विपरीत कुल नहीं होता। स्वर्गमें भी दूसरोको अपनेसे ऊँची स्थितिमें देखकर लोगोके लिये उनका उत्कर्ष असह्य हो उठता है। जो लोग समान स्थितिमें होते हैं, वे भी अपने बराबरवालोके साथ स्पर्शा (लागडॉट) रखते हैं तथा जो स्वर्गवासी अपनेसे हीन स्थितिमें होते हैं, उनको अपनी अपेक्षा अल्पसुखी देखकर अधिक

सुखवालोको संनोष होता है। इस प्रकार अमर्त्यजनों स्पर्शा और संनोषका अनुभव करते हुए पुण्यका पुनः तभीतक स्वर्गमें रहते हैं, जबतक उनके पुण्योका भण्ड समाप्त नहीं हो जाता। पुण्योका क्षय हो जानेपर वे जीव पुनः इस मर्त्यलोकेमें प्रवेश करते हैं और पार्थिव-जगत् धारण करते रहते हैं। राजन् ! स्वर्गमें इन्हीं तरहके गुण और दोष विद्यमान हैं।’

भद्रे ! मेरी यह बात सुनकर राजाने इस प्रकार उत्तर दिया—‘देवदूत ! जहाँ ऐसा फल प्राप्त होता है, उस स्वर्गलोकमें मैं नहीं जाना चाहता। आप इस विमानको लेकर जैसे आये थे, वैसे ही देवराज इन्द्रके पास चले जाइये। आपको नमस्कार है।’

भद्रे ! जब राजाने मुझसे ऐसी बात कही, तब मैं इन्द्रके समक्ष यह वृत्तान्त निवेदन करनेके द्वारे लौट गया। वहाँ जब मैंने सब वार्त्ता ज्यो-की-न्यो कह सुनायी, तब देवराज इन्द्रको महान् आश्चर्य हुआ और वे निराश एवं मधुर वाणीमें मुझसे पुन. बोले।

इन्द्रने कहा—‘दूत ! तुम फिर वहाँ जाओ और उन विरक्त राजाको आत्मज्ञानकी प्राप्तिके द्वारे तत्त्व-मार्गि वाल्मीकिके आश्रममें ले जाओ। वहाँ मार्गि ब्रह्मर्षिने मेरा यह संदेश कह देना—‘महामुने ! इन विन्दु-विन्दु, वीतराग तथा स्वर्गकी भी इच्छा न करनेवाले नन्दजी आप तत्त्वज्ञानका उपदेश दीजिये। वे जन्म-मरण-संसार-दुःखसे पीड़ित हैं; अतः आपके द्वारे हुए तत्त्व-ज्ञानके उपदेशसे इन्हें मोक्ष प्राप्त होगा।’

यो कहकर देवराजने मुझे राजा अरिष्टनेमिके पास भेजा। तब मैंने पुन. वहाँ जाकर राजाको ब्रह्मर्षिजीके पास पहुँचाया, उनसे देवराज इन्द्रका संदेश कहा तथा राजाने उन महर्षिसे मोक्षका निवेदन किया। तब ब्रह्मर्षिने अत्यन्त प्रसन्न होकर मुझसे आश्रम आरम्भ करते हुए राजासे उनके आश्रमका नामावरण किया।

राजाने कहा—भगवन् ! आपको धर्मके तत्त्वका ज्ञान है । जाननेयोग्य जितनी भी बातें हैं, वे सब आपको ज्ञात हैं । विद्वानोंमें श्रेष्ठ महर्षे ! आपके दर्शनसे मैं कृतार्थ हो गया । यही मेरी कुशल है । भगवन् ! मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ । आप बिना किसी विघ्न-बाधाके मेरी शङ्काका समाधान करें । संसार-बन्धनके दुःखसे मुझे जो पीडा हो रही है, उससे किस प्रकार मेरा छुटकारा होगा ? यह बताइये ।



श्रीवाल्मीकिजीने कहा—राजन् ! सुनो; मैं तुमसे अखण्ड रामायणकी कथा कहूँगा । उसे सुनकर यत्नपूर्वक हृदयमें धारण कर लेनेपर तुम जीवन्मुक्त हो जाओगे । राजेन्द्र ! वह रामायण महर्षि वसिष्ठ और श्रीरामके सवादरूपमें वर्णित है । वह मोक्षप्राप्तिके उपायकी मङ्गलमयी कथा है । मैंने तुम्हारे स्वभावको समझ लिया है; अतः तुम्हें अधिकारी मानकर मैं तुमसे वह कथा कहूँगा । विद्वान् नरेश ! सुनो ।

राजाने पूछा—तत्त्वज्ञानियोंमें श्रेष्ठ महामुने ! श्रीराम कौन हैं ? उनका स्वरूप कैसा है ? वे किसके वंशज

थे ? वे वद्व थे या मुक्त ? पहले आप मुझे इन्हीं बातोंका निश्चित ज्ञान प्रदान कीजिये ।

श्रीवाल्मीकिजीने कहा—स्वयं भगवान् श्रीहरि ही शाप-केपालनके वहाने राजा श्रीरामके रूपमें अवतीर्ण हुए थे । वे प्रभु सर्वज्ञ होनेपर भी (अपने भक्त महर्षियोंकी वाणीको सत्य करनेके लिये ही) आरोपित अथवा स्वेच्छासे गृहीत अज्ञानसे युक्त हो साधारण मनुष्योंकी भोंति अल्पज्ञ-से हो गये ।

राजाने पूछा—महर्षे ! श्रीराम तो सच्चिदानन्द-स्वरूप चैतन्यघनविग्रह थे । उन्हें शाप प्राप्त होनेका क्या कारण था ? यह बताइये । साथ ही यह भी कहिये कि उन्हें शाप देनेवाला कौन था ?

श्रीवाल्मीकिजीने कहा—राजन् ! (ब्रह्माजीके मानस पुत्र) सनत्कुमार, जो सर्वथा निष्काम थे, ब्रह्मलोकमें निवास करते थे । एक दिन त्रिलोकीनाथ सर्वशक्तिमान् भगवान् विष्णु वैकुण्ठलोकसे वहाँ पधारे । उस समय ब्रह्माजीने वहाँ उनका पूजन किया । सत्यलोकमें निवास करनेवाले दूसरे-दूसरे महात्माओंने भी उनका स्वागत-सत्कार किया । केवल सनत्कुमारने उनके आदर-सत्कारमें कोई भाग नहीं लिया—वे चुपचाप बैठे ही रह गये । तब उनकी ओर देखकर सर्वेश्वर भगवान् श्रीहरिने कहा—‘सनत्कुमार ! तुम अपनेको निष्काम समझकर अहंकारी हो गये हो, इसीलिये जबवत् स्तब्ध बने बैठे हो । इस गर्वयुक्त चेष्टाके कारण तुम शाप या दण्ड पानेके योग्य हो, अतः शरजन्मा कुमारके नामसे विख्यात हो दूसरा शरीर धारण करो ।’ यह सुनकर सनत्कुमारने भी भगवान् विष्णुको शाप दिया—‘देवेश्वर ! आप भी अपनी सर्वज्ञताको कुछ कालके लिये छोड़कर अज्ञानी जीवके समान हो जायँगे ।’ एक समय अपनी पत्नीको श्रीहरिके चक्रसे मारी गयी देख महर्षि ऋगुका क्रोध बहुत बढ़ गया । वे उन्हे शाप देतेहुए बोले—‘विष्णो !

आपको भी कुछ कालके लिये अपनी पत्नीसे वियोगका भगवान् विष्णुको शापका बहाना क्यों लेना पड़ा, इसका कष्ट सहना पड़ेगा ।' इस प्रकार सनत्कुमार और भृगुके सब कारण मैंने तुम्हें बता दिया, अब तुम्हारे प्रश्नके शाप देनेपर (उनकी वाणी सत्य करनेके लिये) भगवान् अनुसार अन्य सारी बातें भी बता रहा हूँ । तुम सावधान विष्णु उस शापसे मनुष्यरूपमें अवतीर्ण हुए । राजन् ! होकर सुनो । (सर्ग १)

इस शास्त्रके अधिकारीका निरूपण, रामायणके अनुशीलनकी महिमा, भरद्वाजको
ब्रह्माजीका वरदान तथा ब्रह्माजीकी आज्ञासे वाल्मीकिका भरद्वाजको
संसार-दुःखसे छुटकारा पानेके निमित्त उपदेश
देनेके लिये प्रवृत्त होना

दिवि भूमौ तथाऽऽकाशे वहिरन्तश्च मे विभुः ।
यो विभात्यवभासात्मा तस्मै सर्वात्मने नमः ॥

जो प्रकाश (ज्ञान)-स्वरूप सर्वव्यापी परमात्मा स्वर्गमें, भूतलमें, आकाशमें तथा हमारे अंदर और बाहर—सर्वत्र प्रकाशित हो रहे हैं, उन सर्वात्माको नमस्कार है ।

श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं—राजन् ! मैं संसाररूपी बन्धनमें बँधा हुआ हूँ, किंतु इससे मुक्त हो सकता हूँ—ऐसा जिसका निश्चय है तथा जो न तो अत्यन्त अज्ञानी है और न तत्त्वज्ञानी ही है, वही इस शास्त्रको सुनने अथवा पढ़नेका अधिकारी है । जो पहले कथारूपी उपायसे युक्त रामायणके बाल, अयोध्या आदि सभी काण्डोंका विचार (परिशीलन) करके मोक्षके उपायभूत इन वैराग्य आदि छः प्रकरणोंका विचार (अनुशीलन) करता है, वह विद्वान् पुरुष फिर इस संसारमें जन्म नहीं लेता (वह यहाँके जन्म आदि दुःखोंसे सदाके लिये छुटकारा पा जाता है) । शत्रुओंका मर्दन करने-वाले नरेश ! यह रामायण पूर्व और उत्तर—दो खण्डोंसे युक्त है । इसमें राग-द्वेष आदि दोषोंको दूर करनेके लिये रामकथारूपी प्रबल उपाय बताये गये हैं । पहले इन बाल आदि सात काण्डोंकी रचना करके मैंने एकाग्रचित्त हो अपने बुद्धिमान् एवं विनयशील शिष्य भरद्वाजको इसका ज्ञान प्रदान किया; ठीक उसी तरह,

जैसे समुद्र मणि या रत्नकी इच्छा रखनेवाले याचकको मणि प्रदान करता है । बुद्धिमान् भरद्वाजने मुझसे कथारूपी उपायवाले इन सात काण्डोंका अध्ययन करनेके पश्चात् मेरुपर्वतके किसी गहन वनमें ब्रह्माजीके सामने इनका वर्णन किया । इससे महान् आशयवाले लोकपितामह भगवान् ब्रह्मा भरद्वाजके ऊपर बहुत संतुष्ट हुए और उनसे बोले—'वेदा ! तुम मुझसे कोई वर माँग लो ।'



भरद्वाजने कहा—भगवन् ! भूत, भविष्य और वर्तमानके स्वामी पितामह ! जिस उपायसे यह समस्त मानव-समुदाय सम्पूर्ण दुःखसे छुटकारा पा जाय, वह मुझे बताइये । आज मुझे यही वर अच्छा लगता है ।

श्रीब्रह्माजीने कहा—वत्स ! तुम इस विषयमें शीघ्र ही प्रयत्नपूर्वक अपने गुरु वाल्मीकिजीसे प्रार्थना करो । उन्होंने जिस निर्दोष रामायणकी रचना आरम्भ की है, उसका श्रवण कर लेनेपर मनुष्य सम्पूर्ण मोहसे पार हो जायेंगे ।

श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं—भरद्वाजसे यों कहकर सम्पूर्ण भूतोके स्रष्टा भगवान् ब्रह्मा उनके साथ ही मेरे आश्रमपर आये । उस समय मैंने शीघ्र ही अर्घ्य, पाद्य आदिके द्वारा उन भगवान् ब्रह्माजीका पूजन किया । तत्पश्चात् समस्त प्राणियोंके हितमें तत्पर रहनेवाले ब्रह्माजीने मुझसे कहा—‘श्रेष्ठ महर्षे ! श्रीरामचन्द्रजीके स्वभाव एवं स्वरूपका वर्णन करनेवाले इस निर्दोष रामायणका आरम्भ करके जबतक इसकी समाप्ति न हो जाय, तबतक कितना ही उद्वेग क्यों न हो, तुम इसका परित्याग न करना । इस ग्रन्थके अनुशीलनसे यह जगत् इस संसाररूपी क्लेशसे उसी प्रकार शीघ्र पार हो जायगा, जैसे जहाजके द्वारा लोग अविलम्ब समुद्रसे पार हो जाते हैं । तुम लोकहितके लिये इस रामायण नामक शास्त्रकी रचना करो । इसी बातको कहनेके लिये मैं स्वयं यहाँतक आया हूँ ।’ तत्पश्चात् वे मेरे उस पवित्र आश्रमसे उसी क्षण अदृश्य हो गये । तब भरद्वाजने कहा—‘भगवन् ! महामना श्रीरामचन्द्रजी, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, यशस्विनी सीतादेवी तथा श्रीरामचन्द्रजीका अनुसरण करनेवाले परम बुद्धिमान् मन्त्रिपुत्र—इन सबने इस संसाररूपी संकटमें पड़कर कैसा व्यवहार किया था, यह बात मुझे बताइये । इसे सुनकर अन्य लोगोके साथ मैं भी वैसा ही बर्ताव करूँगा ।’

राजेन्द्र ! जब भरद्वाजने आदरपूर्वक मुझसे पृथक् विषयका प्रतिपादन करनेके लिये अनुरोध किया, तब मैं भगवान् ब्रह्माजीकी आज्ञाका पालन करनेके लिये उक्त विषयके वर्णनमें प्रवृत्त हुआ और बोला—‘वत्स भरद्वाज ! सुनो; तुमने जैसा पूछा है, उसके अनुसार तुम्हें सब कुछ बताता हूँ । मेरे उपदेशको सुननेसे तुम अपना सारा मोह दूर कर सकोगे । बुद्धिमान् भरद्वाज ! तुम वैसा ही व्यवहार करो, जैसा कि आनन्दस्वरूप कमलनयन भगवान् श्रीरामने समस्त संसारमें अनासक्तभावसे रहकर किया था ।’

महामना भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, कौसल्या, सुमित्रा, सीता, राजा दशरथ, श्रीरामसखा कृताख और अविरोध, पुरोहित वसिष्ठ, वामदेव तथा अन्यान्य आठ मन्त्री—ये सभी ज्ञानमें पारंगत थे । धृष्टि, जयन्त, भास, सत्यवादी विजय, विभीषण, सुपेण, हनुमान् और इन्द्रजित्—ये श्रीरामके आठ मन्त्री बताये गये हैं । ये सब-के-सब समदर्शी थे । इनका चित्त विषयोंमें आसक्त नहीं था । ये सभी जीवन्मुक्त महात्मा थे और प्रारब्ध-वश जो कुछ प्राप्त होता, उसीमें संतुष्ट रहकर तदनुकूल व्यवहार करते थे । बेटा ! इन लोगोंने जिस प्रकार होम, दान और आदान-प्रदान किया था, इन्होंने जगत्में जिस प्रकार निवास किया था और जिस प्रकार स्मरण-चिन्तन अथवा श्रौत-स्मार्त कर्मोंका पालन किया था, उसी प्रकार यदि तुम भी बर्ताव करते हो तो संसार-रूपी संकटसे छूटे हुए ही हो । उदार एवं सत्त्वगुणसे सम्पन्न पुरुष अपार संसार-समुद्रमें गिरनेपर भी यदि उपर्युक्त उत्कृष्ट साधनको अपना ले तो उसे न तो शोक प्राप्त होता है और न वह दीनता अथवा दुःखमें ही पड़ता है । सब प्रकारकी चिन्ताओंसे मुक्त हो वह परमानन्द-सुधाका पान करके सदाके लिये परम तृप्त हो जाता है ।

(सर्ग २)

जीवन्मुक्तके स्वरूपपर विचार, जगत्के मिथ्यात्व तथा द्विविध वासनाका निरूपण तथा भगवान् श्रीरामकी तीर्थ-यात्राका वर्णन

भरद्वाज बोले—ब्रह्मन् ! आप श्रीरामचन्द्रजीकी कथासे आरम्भ करके क्रमशः जीवन्मुक्तकी स्थितिका मुझसे वर्णन कीजिये, जिससे मैं सदाके लिये परम सुखी हो जाऊँ ।

श्रीवाल्मीकिजीने कहा—साधु पुरुष भरद्वाज ! जैसे रूपाग्रहित आकाशमें नील-पीत आदि वर्णोंका भ्रम होता है, उसी प्रकार निर्गुण-निराकार ब्रह्ममें अज्ञानवश जगत्की सत्ताका भ्रम होता है । यह जो जगत्सम्बन्धी भ्रम उत्पन्न हो गया है, इसे इस तरह भुला दिया जाय कि फिर कभी इसका स्मरण ही न हो—इसीको मैं उत्तम ज्ञान मानता हूँ । इस दृश्य-प्रपञ्चका अत्यन्त अभाव है—यह बिना हुए ही भासित हो रहा है, जबतक ऐसा बोध नहीं होता, जबतक कोई कभी भी उस उत्कृष्ट आत्मज्ञानका अनुभव नहीं कर सकता; इसलिये आत्मज्ञानका अन्वेषण—उसकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करना चाहिये । इस (योग-वासिष्ठरूप) शास्त्रका ज्ञान होनेपर इसी जीवनमें उस आत्मतत्त्वका बोध हो जाय—यह सर्वथा सम्भव ही है—वह होकर ही रहेगा । इसी उद्देश्यसे इस शास्त्रका विस्तार (प्रचार-प्रसार) किया जाता है । यदि तुम (श्रद्धा-भक्तिके साथ) इस शास्त्रका श्रवण करोगे तो निश्चय ही तुम्हें उस आत्मतत्त्वका ज्ञान प्राप्त हो जायगा; अन्यथा उसकी प्राप्ति असम्भव है ।

निष्पाप भरद्वाज ! यह जगत्स्वरूपी भ्रम यद्यपि प्रत्यक्ष दिखायी देता है, तो भी इस शास्त्रके विचारसे अनायास ही ऐसा अनुभव हो जाता है कि 'यह है ही नहीं'—ठीक उसी तरह जैसे आकाशमें नील आदि वर्ण प्रत्यक्ष दीखनेपर भी विचार करनेसे बिना परिश्रमके ही यह समझमें आ जाता है कि इसका अस्तित्व नहीं है । यह दृश्य-जगत् वास्तवमें है ही नहीं, ऐसा बोध होनेपर जब मनसे दृश्य-प्रपञ्चका मार्जन (निवारण या अभाव) हो जाय,

तब परमनिर्वाणरूप शान्तिका स्वतः अनुभव होने लगता है । ब्रह्मन् ! सम्पूर्णरूपसे वासनाओंका जो परिश्रम (अत्यन्त अभाव) है, वही उत्तम मोक्ष कहलाता है । उसे अविद्यारूपी मलसे रहित ज्ञानी ही प्राप्त कर सकते हैं । विप्रवर ! जैसे शीतके नष्ट होनेपर हिमका नष्ट गल जाते हैं, उसी प्रकार वासनाओंके क्षीण हो जानेपर (वासना-पुञ्जरूप) चित्त भी शीघ्र ही गढ़ जाता है (उसका अभाव-सा हो जाता है) ।

वासना दो प्रकारकी बनायी गयी हैं—एक गुन-वासना और दूसरी मन्त्रि-वासना । मन्त्रि-वासना जन्मकी हेतुभूत है—उसके द्वारा जीव जन्म-मृत्युमें चक्रमें पड़ता है और शुद्ध वासना जन्मका नाश करनेवाली (अर्थात् मोक्षकी मायिका) है । विद्वानोंने मन्त्रि-वासनाको पुनर्जन्मकी प्राप्ति करानेवाली बनाया है । अज्ञान ही उसकी घनीभूत आकृति है तथा वह बड़े बड़े अहंकारसे सुशोभित होती है । जो भुने हुए बीजके समान पुनर्जन्मरूपी अङ्कुरको उत्पन्न करनेकी शक्तियों त्यागकर केवल शरीर-धारण मात्रके लिये स्थित रहता है, वह वासना 'शुद्धा' कही गयी है । जो योग शुद्ध गमनाने युक्त है, वे फिर जन्मरूप अनर्थके भाजन नहीं होते । जानने योग्य परमात्माके तत्त्वको जाननेवाले वे परम बुद्धिमान् पुरुष 'जीवन्मुक्त' कहलाते हैं ।

महामते भरद्वाज ! अब तुम श्रीरामचन्द्रजीकी जीवन्-चर्यासे सम्बन्ध रखनेवाली इन महत्कारिणी यागयाग प्रवृत्तियों का श्रवण करो । मैं उसका वर्णन करूँगा, उम्मीद है कि तुम सदाके लिये सम्पूर्ण तत्त्वका ज्ञान प्राप्त कर सकोगे । वर ! जिन्हें कहींसे भी कोई भ्रम नहीं है, वे कल्प-नयन भगवान् श्रीराम जब अच्युतके पञ्चदश दिवसोंमें निकलकर घरको लौटे, तब भानि-भानिजी लौटते रहते हुए उन्होंने राजभवनमें कुछ दिन व्यतीत किये । तबन्तर

कुछ समय बीतनेपर, जब कि राजा दशरथ भूमण्डलके पालनमें लगे थे और प्रजावर्गके लोग रोग-शोकसे रहित हो बड़े सुखसे दिन बिता रहे थे, एक दिन अनन्त कल्याणमय गुणोंसे सुशोभित होनेवाले श्रीरामचन्द्रजीके मनमें तीर्थों तथा पुण्यमय आश्रमोंके दर्शनकी अत्यन्त उत्कण्ठा जाग उठी। तब श्रीरामने पिताके पास जाकर उनके चरण-कमलोंमें प्रणाम किया और इस प्रकार कहा।



श्रीराम बोले—पिताजी ! मेरे स्वामी महाराज ! मेरे मनमें तीर्थों, देवमन्दिरो, वनों तथा आश्रमोंका दर्शन करनेके लिये बड़ी उत्कण्ठा हो रही है। आपके समक्ष मेरी यह पहली याचना है, आप इसे सफल करने योग्य हैं। नाथ ! संसारमें ऐसा कोई याचक नहीं है, जिसे अभीष्ट वस्तु देकर आपने उसका आदर न किया हो।

श्रीराम पहली बार प्रार्थी होकर राजाके समक्ष उपस्थित हुए थे। उनके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर राजा दशरथने वसिष्ठजीके साथ विचार करके उन्हें तीर्थ-

दर्शनके लिये आज्ञा दे दी। उस समय शुभ नक्षत्र और शुभ दिनमें ब्राह्मणोंने आकर उनके लिये स्वस्तिवाचन किया। उनके शरीरको माङ्गलिक वेष-भूषासे अलंकृत किया गया। माताओंने उन्हें हृदयसे लगा-लगाकर आशीर्वाद दिये और आभूषण पहनाये। फिर वे रघुनाथजी तीर्थ-यात्राके लिये उद्यत हो लक्ष्मण और शत्रुघ्न—इन दो भाइयों, वसिष्ठजीके भेजे हुए शास्त्रज्ञ ब्राह्मणों तथा अपने ऊपर स्नेह रखनेवाले कुछ इने-गिने राजकुमारोंके साथ अपने उस राजभवनसे बाहर निकले। श्रीरामचन्द्रजी दान-मान आदिसे ब्राह्मणोंको अपने अनुकूल बनाते, सब ओरसे प्रजाओंके आशीर्वाद सुनते और सम्पूर्ण दिशाओंके दृश्योंपर दृष्टिपात करते वन्य-प्रदेशोंमें भ्रमण करने लगे। उन्होंने अपने निवास-स्थान उस कोसल जनपदसे आरम्भ करके स्नान, दान, तप और ध्यानपूर्वक क्रमशः समस्त तीर्थ-स्थानोंका दर्शन किया। नदियोंके पवित्र तट, पुण्य वन, पावन आश्रम, जंगल, जनपदोंकी सीमाओंमें स्थित समुद्र और पर्वतोंके तट, चन्द्रमाके समान उज्ज्वल आभावाली गङ्गा, नील कमलकी-सी कान्तिवाली निर्मल कलिन्दनन्दिनी यमुना, सरस्वती, शतद्रु (सतलज), चन्द्रभागा (चिनाव), इरावती (रावी), वेणी, कृष्णवेणी, निर्विन्ध्या, सरयू, चर्मण्वती (चम्बल), वितस्ता (झेलम), विपाशा (व्यास), बाहुदा, प्रयाग, नैमिषारण्य, धर्मारण्य, गया, वाराणसी (काशीपुरी), श्रीशैल, केदारनाथ, पुष्कर, क्रमप्राप्त मानस सरोवर, उत्तरमानस, वड़वामुख, अन्य तीर्थसमुदाय, अग्नितीर्थ, महातीर्थ, इन्द्रद्युम्न सरोवर आदि पुण्यतीर्थ, सरोवर, सरिताएँ, नद, तालाब या कुण्ड—इन सबका उन्होंने आदरपूर्वक दर्शन किया।

१. वेणीनदी कृष्णामें मिलनेसे पहले केवल वेणी कहलाती है, कृष्णामें सगम होनेके पश्चात् उसका नाम कृष्णवेणी हो जाता है।

२. कुछ लोगोंकी मान्यताके अनुसार बाहुदा सुप्रसिद्ध राप्ती नदीकी एक सहायक नदी है।



COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with

By
Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!

 **KAPWING**

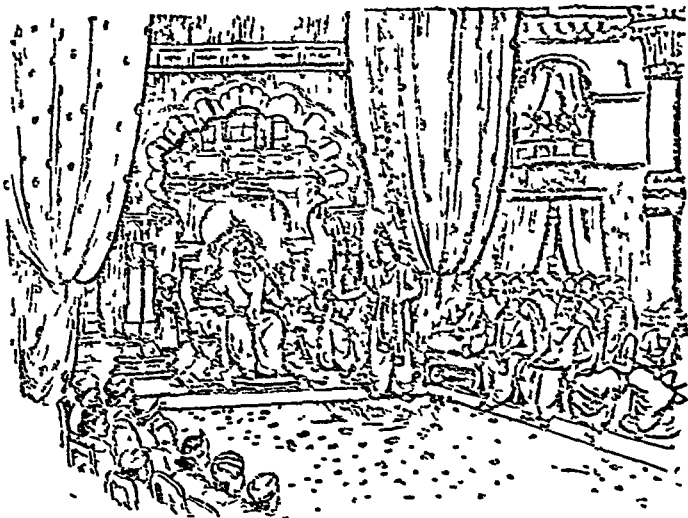
खामी कार्तिकेय, शालग्रामस्वरूप श्रीविष्णु, भगवान् विष्णु और शिवके चौसठ स्थान, नाना प्रकारके आश्चर्य-जनक दृश्योसे विचित्र शोभा धारण करनेवाले चारों समुद्रोंके तट, विन्ध्यपर्वत और मन्दराचलके कुक्ष, हिमालय आदि सात कुलपर्वतोंके स्थान तथा बड़े-बड़े राजर्षियों, ब्रह्मर्षियों, देवताओं और ब्राह्मणोंके मङ्गलकारी पावन आश्रमोंका भी श्रीरामचन्द्रजीने श्रद्धापूर्वक दर्शन किया। दूसरोंको मान देनेवाले श्रीरघुनाथजी अपने

भाइयोंके साथ बारंबार चारों दिशाओंके प्रान्तभागों तथा भूमण्डलके सभी छोरोंमें घूमते फिरे। जैसे देवता आदिसे सम्मानित भगवान् शंकर सम्पूर्ण दिशाओंमें विहार करके पुनः शिवलोकमें लौट आते हैं, उसी प्रकार रघुनन्दन श्रीराम देवताओं, किंनरों तथा मनुष्योंसे सम्मानित हो इस सम्पूर्ण भूमण्डलका अवलोकन करके फिर अपने घर लौट आये। (सर्ग ३)

तीर्थ-यात्रासे लौटे हुए श्रीरामकी दिनचर्या एवं पिताके घरमें निवास; राजा दशरथके यहाँ विश्वामित्रका आगमन और राजाद्वारा उनका सत्कार

श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं—भरद्वाज ! जब श्रीमान् रामचन्द्र नगरको लौटे, उस समय (उनका स्वागत करते हुए) पुरवासीजन उनके ऊपर राशि-राशि पुष्प बिखेरने लगे। उस अवस्थामें, जैसे इन्द्र-पुत्र जयन्त अपने स्वर्गीय भवनमें प्रवेश करते हैं, उसी प्रकार उन्होंने अपने महलमें प्रवेश किया। वहाँ पहुँचकर रघुनाथजीने पहले पिताको प्रणाम किया, फिर क्रमशः कुलगुरु

हृदयसे लगाया और श्रीरामने भी उनके प्रति अभिवादन एवं प्रिय-भाषण आदि यथोचित आचार-व्यवहारका निर्वाह किया। उस समय श्रीरघुनाथजी आनन्दोद्धारने झले नहीं समाते थे। अयोध्यामें श्रीरामचन्द्रजीके शुभागमनके उपलक्ष्यमें व्यातार आठ दिनोंतक आनन्दोत्सव मनाया गया। उस समय हर्षसे मनवाली जनताके द्वारा सुखपूर्वक किये गये गीत-वाद्य आदिका मधुर कोलाहल



वसिष्ठजीको, बड़े बन्धु-बान्धवोंको, ब्राह्मणोंको तथा कुल-के बड़े-बड़े लोगोंको मस्तक झुकाया। फिर सुहृदों, बन्धुओं, पिता तथा ब्राह्मणसमुदायने श्रीरामको बारंबार

सब ओर व्याप्त हो गया था। तबने श्रीरघुनाथजी विभिन्न देशोंमें प्रचलित नाना प्रकारके रहन-सहनका जहाज-नौका दर्शन करते हुए घरमें ही सुखपूर्वक रहने लगे।

श्रीरामचन्द्रजी प्रतिदिन नन्दे उठकर (स्नान आदिके पश्चात्) मित्रिहृदय मन्द-वन्दन करके राजसभामें बैठे हुए अपने इन्द्रतुल्यतेजस्वी पिता मशरान दशरथका दर्शन किया करते थे। वहाँ एक परमेश्वर अमिष आदिके नगर वेत्तर अङ्गवर्जित इन्द्रमणि

कथा-वार्ता सुना करते थे। भाइयोंके साथ तीर्थयात्रासे लौटने पर श्रीरघुनाथजी प्राप्त ऐसी ही दिनचर्याको अपनाकर पिताके घरमें सुखपूर्वक रहते थे। निम्नान् भरद्वाज !